ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित साहित्य

तकषी की कहानियाँ

(तकषी की श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह)

अनुवाद-संयोजन

डॉ. वी. डी. कृष्णन नंपियार



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन



राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला
लोकोदय ग्रन्थांक : ४४७

तकषी की कहानियाँ
तकषी शिवशंकर पिल्लै

प्रथम संस्करण : १९८५

मूल्य : ३०/-

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोधी रोड
नई दिल्ली-११०००३

मुद्रक
प्रमोद प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-११००९३

आवरण शिल्पी : श्रुति

THAKAZHI KEE KAHANIYAN by Thakazhi Sivasankar Pillai. Published by Bharatiya Jnanpith, 18, Institutional Area, Lodhi Road, New Delhi - 110003. Printed at Pramod Printers, Shahdara, Delhi. First Edition 1985. Price Rs. 30/-

तकषी : मूक पीड़ितों के प्रवक्ता

केरल का इतिहास प्राचीन है, लेकिन इसकी भाषा मलयालम पूर्णतः विकसित सत्ता के रूप में एक हजार वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है। मलयालम द्रविड़ भाषा परिवार से सम्बन्धित है, जिसकी अन्य प्रमुख सदस्य भाषाएँ हैं तमिल, तेलुगु तथा कन्नड़। मलयालम स्वयं तमिल के अत्यधिक निकट है। भौगोलिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के कारण भाषाएँ एक-दूसरे के निकट आयी तथा एक बिन्दु पर ये दोनों भाषाएँ एक ही तने की दो शाखाओं के समान हो गयी।

भाषा की विकासशील अवस्था में, संस्कृत विद्वता की परम्परा, विशेषकर नम्बूदरियों मे, एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। वास्तव मे, भाषा के विकास की पूरी अवधि मे यह सुस्पष्ट है कि प्रत्येक अवस्था में मलयालम को सूक्ष्म, सुदृढ तथा समेकित किया जाता रहा है। साहित्य की विराट् सम्पदा—कविता, गीत, चाम्बुस, मुक्तास इस अवधि से सम्बन्धित है। स्पष्ट-पहचान मुक्त स्वर के साथ सामने आनेवाला प्रथम प्रमुख सर्जनात्मक व्यक्तित्व टी. एपुथाचन का था, जिसका काल १६वीं शताब्दी है। एपुथाचन कवि, अनुवादक तथा व्याख्याकार थे।

एपुथाचन के बाद के वर्षों ने साहित्य की नई विधा—कथकली साहित्य का प्रादुर्भाव देखा। कथकली को अन्तर्राष्ट्रीय रूप से महान् ओजस्विता एवं संस्कारिता से युक्त एवं नृत्य रूप में जाना जाता है। मगर व्यापक रूप से इस बात की जानकारी नहीं है कि कथकली साहित्य क्षेत्र, मात्रा एवं गुणता की दृष्टि से अपरिमित है और इसने एक शताब्दी से अधिक तक मलयालम साहित्यिक परिदृश्य पर अपना वर्चस्व बनाये रखा है। वास्तव में एपुथाचन एवं कथन नम्बियार (१८वीं शती) दोनों के बीच के समय में प्रत्येक रचनात्मक एवं महत्त्वपूर्ण प्रतिभा ने कथकली की ओर ध्यान दिया। नम्बियार में चित्रांकन करनेवाली खोजपूर्ण प्रतिभा थी जिसे 'ओट्टंतुल्लल' की रचना का श्रेय दिया जाता है। नम्बियार के बाद, एक बार फिर रचनात्मक क्षेत्र मे तुलनात्मक दरिद्रता देखने मे आयी। तथापि यह काल संक्रान्ति का था और अध्ययन, मनन, सावधानीपूर्वक आत्म-परीक्षण तथा बाह्य प्रभावों को आत्मसात् करने का था। उस अवधि मे विविध

शक्तियाँ कार्यरत थीं—मुद्रण एवं प्रकाशन, मिशनरियों का प्रभाव, पाश्चात्य साहित्य एवं विचारधारा का टकराव।

१९वीं शताब्दी के अन्त तक मलयालम एक सक्रिय एवं ओजस्वी वाहक के के रूप में विकसित हो चुकी थी।

कवियों में वेनमनी, नादुवम, शीवोली, कथुल्लिल अच्युत मेनन, कोदुनगल्लूर, कन्हीकुट्टन थम्पुरन के नाम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नामों में थे। इन कवियों की रचनाएँ गीतात्मक मनोवेगों के प्रस्फुटन की द्योतक हैं। इनमें से कुछ कवि अभिजात वर्ग के थे और उनके लिए कविता शास्त्रीय ढाँचे में मुख्यतः बौद्धिक मनोरंजन थी। तब, शताब्दी-परिवर्तन पर तीन महाकवियों—कुमारन आशान, परमेश्वर अय्यर एवं वल्लतोल का प्रादुर्भाव हुआ। यह वास्तविक आधुनिक चेतना प्रारम्भ था। इनमें से वल्लतोल का नाम केरल से बाहर सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उनके हाथों में कविता महान् सौन्दर्य, आकर्षण एवं शक्ति के उपकरण के रूप में सामने आयी। उनकी वाणी जनता की वाणी थी। ऐसी वाणी जो अति प्राचीन अतीत की अनुगूँज लिये थी फिर भी इतनी नवीन एवं समसामयिक थी मानो हमारी नवीनतम आकांक्षाएँ हों। यह वाणी ईश्वर एवं मानवीय प्रेम का गुणगान करती थी।

गद्य में १९वीं शताब्दी की समाप्ति ने आधुनिक उपन्यास का प्रारम्भ देखा। चन्दुमेनन को मलयालम उपन्यास का जनक कहा जा सकता है और उन के उपन्यास 'इन्दुलेखा' को महत्त्वपूर्ण 'युगान्तरकारी' घटना माना जा सकता है। चन्दुमेनन के उत्तराधिकारियों ने उपन्यास को एक साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित किया किन्तु उनकी कृतियों ने, जहाँ उनमें ऐतिहासिक विवरणों का कार्य नहीं हुआ है, सम्मानित मध्यवर्ग एवं उसकी समस्याओं का चित्रांकन किया है।

लघु कहानी भी अत्यधिक महत्त्व की साहित्यिक विधा के रूप में विकसित हुई। पश्चात् यहाँ निबन्धकार, समीक्षक, राजनैतिक इश्तहार-लेखक, नाटककार तथा फिल्मी-पटकथा लेखक हैं जो साहित्यिक परिदृश्य को सक्रिय बना रहे हैं।

आज के लेखक एक नयी शक्ति के रूप में उभरकर आये हैं जिन्होंने पहले तो राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न किये और उसे प्राप्त करने के बाद सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष जारी रखा। इनमें से तकषी शिवशंकर पिल्लै सम्भवतः सर्वाधिक सक्रिय एवं सर्वाधिक मुखर थे।

तकषी शिवशंकर पिल्लै का जन्म अप्रैल, १९१२ में केरल राज्य में एल्लेपी के दक्षिण में दसेक मील की दूरी पर बसे एक छोटे-से गाँव तकषी में हुआ था। दक्षिण भारत के बहुत से प्रतिष्ठित लेखकों, कवियों तथा संगीतज्ञों की भाँति शिवशंकर पिल्लै को भी उनके ग्राम तकषी के नाम से जाना जाता है। उनके पिता कृषक

थे, सज्जन थे और विद्वान् थे। वे कथकली के पारखी थे। यह शायद इसलिए भी था कि वे हमारे युग के महानतम कथकली नर्तक कुंजुकुरुप के भाई थे। यह परिवार संस्कृत की संस्कृति एवं केरल की देशी कला मे समृद्ध था। केरल के परिवारों की परम्परा के अनुसार, धुंधलका होते ही परिवार का मुखिया दीपक के पास बैठकर हिन्दुओं के महाकाव्यों 'महाभारत' और 'रामायण' का पाठ करता था और बालक तकषी मन्त्रमुग्ध होकर अपने पिता के मुख से इन कहानियों को सुना करता था।

इस प्रकार तकषी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई : छोटे बालक के रूप मे वह गाँव के ही स्कूल मे गया पश्चात् अम्बालपुषा के मिडिल स्कूल मे। समुद्र के किनारे पर स्थित स्कूल मछुआरों की बस्ती मे दायीं ओर था। यही वह स्थान था जहाँ तकषी जीवन मे पहली बार मछुआरे पुरुष-स्त्रियों के सम्पर्क मे आये। बाद में, युवक के रूप मे एक वकील की हैसियत से काम किया। बहुत से मछुआरे उनके मुवक्किल थे। पेरीकुट्टी और करुकम्मा उन्ही व्यक्तियों में से थे, जिनसे वह मिले थे तथा जिनके जीवन और पीडाओं को उन्होंने निकट से जाना-समझा था।

अम्बालपुषा के मिडिल स्कूल में अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद, तकषी त्रावनकोर राज्य की तत्कालीन राजधानी त्रिवेन्द्रम चले गये। वकालत की शिक्षा हेतु वह विधि महाविद्यालय में भर्ती हो गये। उस समय त्रिवेन्द्रम एक जीवन्त स्थान था। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम पूरे जोर पर था। शीघ्र ही वह वहाँ एक छोटे से बुद्धिजीवी वर्ग के सदस्य बन गये, जो नियमित रूप से के. बालकृष्ण पिल्लै के निवास-स्थान पर एकत्र होता था। बालकृष्ण पिल्लै एकमात्र साहित्यिक पत्रिका 'केसरी' के सम्पादक थे। वह एक ऐसी बुद्धिजीवी गोष्ठी के नेता थे जो राजनीति और साहित्य पर विचार-विमर्श किया करती थी। बहुत से युवा लेखक तथा राजनीतिज्ञ उनके ओजस्वी नेतृत्व के अन्तर्गत उभरे, जिनमें से कुछ ने आगे चलकर केरल के बौद्धिक और राजनैतिक जीवन को नेतृत्व प्रदान किया।

इसी स्थान और काल मे तकषी के पठन-पाठन तथा बौद्धिक विकास का क्षेत्र विस्तृत हुआ। उन्होंने अंग्रेजी और यूरोपियन साहित्य, जिनमें फ्रायड और मार्क्स का नाम उल्लेखनीय है, का व्यापक अध्ययन किया। उन्होंने 'केसरी' में कई छोटी कहानियाँ लिखी, जिनमे से 'बाढ मे' तथा 'फेयर बेबी' कहानियों ने उन्हें उज्ज्वल भविष्य युक्त नये लेखक के रूप में स्थापित किया।

१६३४ मे तकषी जी की प्रथम प्रकाशित पुस्तक 'पुथुमलार' (नये अंकुर) के नाम से आयी। यह एक कथा-संकलन है। इसे अभूतपूर्व सफलता मिली। इसके बाद इनका प्रथम उपन्यास 'प्रतिफलम्' (पुरस्कार) प्रकाशित हुआ जो प्रकाशन के कुछ सप्ताह के भीतर ही पूरा बिक गया। उसी वर्ष दूसरा उपन्यास आया 'पतितपंकजम्' (झरा हुआ कमल)। उनकी कलम-कहानियाँ ही कहानियाँ,

लिखती चली गयी, संकलन के बाद, सकलन प्रकाशित होते गये जिनमे से 'अतियोपुक्कुकल' (अन्तर्धारा), 'नित्यकन्निका' (अविवाहिता) तथा 'चंगातिकल' (कामरेड) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थे। इन कहानियों मे प्रबल सामाजिक तत्त्व विद्यमान हैं। बहुत-सी कहानियों मे समाज की आलोचना निहित है तथा उन्होंने वामपथी राजनैतिक सहानुभूतियों को भी प्रकट किया है।

अभी तक मलयालम साहित्य मे मध्यवर्ग के जीवन को ही सर्वाधिक चित्रित किया गया था। तकषी और उसके समसामयिक लेखकों ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के साधनविहीन गरीब आदमी को साहित्य में प्रविष्ट किया। राष्ट्रीय संघर्ष ने स्वाधीनता आन्दोलन मे जनसाधारण की भूमिका पर विशेष बल दिया जो त्रावनकोर जैसे तुलनात्मक रूप से बेहतर प्रशासित तथा एकान्तप्रिय पड़ोसी राज्यो मे भी जगल की आग की तरह फैल गया। राज्य कांग्रेस की स्थापना हुई और जैसा कि अपरिहार्य था तकषी भी इसकी चपेट मे आ गये। एक अथवा दो बार अपने राजनैतिक क्रिया-कलापो के कारण वह गिरफ्तार होते-होते बचे और छुपना पड़ा। उनका सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'तोट्टियुडे माकन' (भंगी का बेटा) इन्ही भूमिगत होने के दिनो मे त्रिचूर के पास वादक्कचेरी मे लिखा गया था।

पिछली लड़ाई के आस-पास, तकषी अम्बालपुषा मे वकील के रूप में काम करने के लिए लौट आये। वकील के रूप मे उनके कार्य मे नियमित रूप से रुकावट आती रही और कहानी-लेखन की मात्रा मे बढोत्तरी होती रही।

१९४७ मे 'तोट्टियुडे माकन' (भगी का बेटा) प्रकाशित हुआ। यह मलयालम का व्यापक रूप से चर्चित उपन्यास बना। यह एक नौजवान भंगी, जो अछूतों का भी अछूत है, की कहानी है। इसका चित्रण इतनी ईमानदारी और पूर्ण वास्तविकता से हुआ है कि यह पाठक को गहरे मे कुरेदता चला जाता है। युवा भगी चाहता है कि उसका बच्चा गन्दगी एवं उबकाई लाने वाली दुर्गंधों के जीवन से निकलकर बेहतर जीवन-यापन करे। इस सघर्ष मे वह अपने ही लोगो को धोखा देकर अवसरवादी बन जाता है। लेकिन सामाजिक कुरीतियाँ अत्यधिक प्रबल हैं और बच्चे को स्कूल तथा मित्रो के बीच से बहिष्कृत कर दिया जाता है। अन्त में युवक एक सक्रामक बीमारी से ग्रस्त होकर मर जाता है। लड़ाई हार जाता है और बच्चा आगे चलकर स्वयं भगी का काम करने लगता है। लड़ाई हारी गई, मगर सघर्ष जारी है तथा समाज की आँखें, कान और चेतना को नग्न सत्य के एक अन्य परिच्छेद द्वारा उद्घाटित कर दिया गया है।

१९४८ मे 'रंतिटंग्षी' (दो मानक) का प्रकाशन हुआ। इसने तकषी को मलयालम में अपने समय के अग्रणी उपन्यासकार के रूप मे प्रतिष्ठित किया। तकषी के अपने ही शब्दो मे 'रंतिटंड्षी' उस जीवन के अत्यन्त निकट है जो उन्होंने अनुभव किया, जाना तथा एक किसान के बेटे के रूप मे जिसकी पीड़ा को वहन

किया। यह पुस्तक रूसी, चैक, हिन्दी, बांग्ला, उर्दू, सिन्धी, पंजाबी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, फारसी, अरबी तथा अंग्रेजी मे अनूदित हुई। इस कहानी पर फ़िल्म भी बन चुकी है।

'रंतिटंडपी' मे अछूत कामगार वर्ग 'पुलायार' का चित्रण है, जो अपने भू-स्वामियो के लिए कठोर एवं प्रायः अपमानजनक परिस्थितियो में भूमि पर खेती-वाडी करते हैं। समस्त परिस्थिति का अंकन पूर्ण निष्ठा से किया गया है, मगर जहाँ तक तकपी की सहानुभूति का प्रश्न है उसमे किसी प्रकार की त्रुटि नही हुई है।

'रंतिटंडपी' के बाद भी, और लघु कहानियाँ तथा लघु उपन्यास प्रकाश मे आये। मार्च १९५६ मे 'चेम्मीन' का प्रकाशन हुआ, जिस पर तकपीजी को साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। यह शीघ्र ही तकपी की अन्य कई रचनाओं की भाँति, उस समय का सर्वाधिक चर्चित उपन्यास बन गया। हरेक घर तथा साहित्यिक क्षेत्रों, दोनों मे ही यह पुस्तक चर्चा तथा गोष्ठियों का विषय बन गयी। जहाँ कही चार लोग इकट्ठे हुए 'चेम्मीन' बातचीत का विषय रही।

कठोर यथार्थवादी के रूप में प्रसिद्ध तकपी ने 'चेम्मीन' में अपने यथार्थ को नये रोमानी अन्दाज के यथार्थ में प्रस्तुत किया है। परिणाम यह हुआ कि 'चेम्मीन' मे उस कथा के गुण विकसित हो गये, जिसमें मछुआरों के जीवन, अन्धविश्वासों, उनकी आन्तरिक मान्यताओ, परम्पराओं तथा पीडाओं का चित्रण एक गहन एवं विशिष्ट नैतिकतावादी जीवन-शैली के रूप मे हुआ है।

केरल का समुद्री किनारा मछुआरों के छोटे-छोटे गाँवो से भरा है, जहाँ सीधे-सादे मछुआरो के छोटे-मोटे समुदाय, जिनका जीवन समुद्र को समर्पित है, बसे हुए हैं। 'चेम्मीन' में ऐसे ही एक ग्राम की, वास्तव मे दो ग्रामों की, कथा कही गयी है, क्योंकि उपन्यास की नायिका एक गाँव से दूसरे गाँव मे आती-जाती रहती है।

इन मछुआरे स्त्री-पुरुषो की गरीबी, कठिन जीवन-परिस्थितियाँ तथा दृढ सरलता विश्वसनीय रूप से बयान की गयी है। जीवन विभिन्न तत्त्वों के विरुद्ध लम्बा संघर्ष है, मगर उन्हें अपनी निराधार जीवन-शैली पर गर्व है तथा उसे यह किसी भी लालच मे आकर बदलने को तैयार नही हैं। समुद्र की देवी कतलम्मा, जो भलाई की रक्षा करती है तथा बुराई को दण्ड देती है, पर उनकी एकमात्र आस्था ही उन्हें जिलाये रखती है।

ऐसे छोटे समुदायों तक मे रीति-रिवाज बड़े प्रबल हैं, इस प्रकार परम्पराएँ भी दृढ है। इनमें जातियाँ और उपजातियाँ हैं—नौका स्वामित्व वाला वर्ग, मात्र मछुआरे, पूर्व के भीतरी भागो से आये निम्नवर्गीय स्त्री-पुरुष। उनमे व्यापारी हैं, जो प्रायः मुस्लिम हैं और मछलियाँ खरीदकर उन्हें साफ़ कर आसपास के नगरों

महत्त्वपूर्ण संकेत है।

समसामयिक लेखन में लगभग समस्त स्थानों पर, चाहे गद्य हो अथवा पद्य, परम्परा तथा परम्परागत मूल्यों के प्रति तन्मयता के साथ-साथ भुखमरी, अन्याय तथा सामाजिक असमानता की सर्वाधिक भयावह समस्याओं के प्रति गहरा सरोकार का यह द्विभाजन मिलता है।

निःसन्देह, इससे प्रायः कई बार कलह एवं विवादों का जन्म हुआ है। अधिकांशतः प्रत्येक स्थान पर दो प्रवृत्तियाँ एवं दो वर्ग दिखाई देते हैं। लेखकों का सम्मानित सटीक वर्ग जो गाँधीजी के प्रति आदर का भाव रखता है, खादी का दिखावा करता है। इस वर्ग के लेखक इस प्रकार लिखते हैं मानो साहित्य रहस्यमय जीवन का प्रकटीकरण है जो कि धरती पर अनन्तता से संवाद करने का एकमात्र साधन है। दूसरा वर्ग स्पष्ट रूप से मूर्ति-भंजक, श्रद्धाविहीन, आक्रोशी तथा अहंकारी लेखकों का है। दूसरे वर्ग से संबंधित लेखकों की मान्यता है कि लेखकों को अपने तथा अपने युग से हटकर नहीं देखना चाहिए, तथा जीवन के यथार्थ के प्रति उनमें गहन संवेदना होनी चाहिए। केरल में मैंने पाया है कि साहित्य और लेखक प्रायः बदमिजाज हो जाते हैं, लेकिन उनमें किसी प्रकार की ग्रन्थि विद्यमान नहीं है। इस प्रकार की ग्रंथियों का पूर्ण अभाव किसी साहित्य की परिपक्वता का मापदण्ड है, जो कि एक लेखक के 'उत्तरदायित्व' का मानदण्ड भी है। वस्तुओं को सतह से गुज़र जाने से काम नहीं चलेगा। चाँदनी और मलमल, भावनात्मक एवं कोरे वाक्यांशों से कुछ नहीं होगा। जीवन की समस्याओं को गहनता से अनुभव किया जाना है, उन्हें किसी भी जीवन में अत्यन्त गहरे में महसूस करना होगा। तभी साहित्य प्राणवान बन सकता है।

आज के मलयालम लेखक ने इस प्रकार का स्थायित्व पर्याप्त मात्रा में प्राप्त कर लिया है। उसने साहित्य और जीवन के मध्य जीवन्त नातेदारी को स्वीकार कर लिया है। इसका अर्थ यह हुआ कि उसने विकासात्मक प्रक्रिया में कलाओं, विशेषकर कलाओं के सर्वाधिक सुस्पष्ट रूप में साहित्य की भूमिका को स्वीकार कर लिया है। इस सबका बेहतरीन उदाहरण है तकषी शिवशंकर पिल्लै द्वारा लिखित उपन्यास 'कॅयर' (नारियल जटा)।

'कॅयर' तकषी की अब तक की सर्वश्रेष्ठ रचना है। मेरे देखने में अब तक इसके आयामों, इसकी व्यापक और इसकी अन्तर्दृष्टि वाला कोई अन्य भारतीय उपन्यास नहीं आया है, जिसमें मनुष्य-मात्र समय-चक्र एवं परिवर्तन में इस प्रकार उलझ गया हो और तब भी उसका अभ्युदय सम्मानजनक एवं निरापद ढंग से हुआ हो। व्यक्ति विशेष अधिक महत्त्व नहीं रखता। यह तो सामाजिक संगठन है जो उस स्थिति अथवा संपोषण से शक्ति ग्रहण करता प्रतीत होता है, जिसका उसे सामना करना पड़ा हो अथवा जिसके सामने उसे छोड़ दिया गया हो।

उनके समय से पूर्व के वैवाहिक जीवन के प्रकाश को सदैव धूमिल करती रहती हैं और अन्त में अवश्यंभावी त्रासदी घटित होकर रहती है।

'चेम्मीन' पर स्वर्गीय रामू करियात द्वारा फिल्म बनाई गई थी जिसे वर्ष १९६६ में सर्वश्रेष्ठ भारतीय फ़िल्म के रूप मे राष्ट्रपति का स्वर्णपदक प्रदान किया गया। यूनेस्को ने अपने पूर्व-पश्चिम कार्यक्रमों के अन्तर्गत इसे अनुवाद के लिए चुना। अंग्रेज़ी अनुवाद हार्पर्स, न्यूयार्क और गोलैंक्ज, लन्दन ने छापे। यूरोपियन अनुवाद फ्रेंच, जर्मन, इतालवी, स्पैनिश, डच, चैक, स्लाव, पोलिश, हंगेरियन आदि भाषाओं में प्रकाशित हुए। एशिया मे अरबी, वियतनामी, सिंहली तथा चीनी भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हुए। नि.सन्देह, अपेक्षा के अनुसार साहित्य अकादमी द्वारा भारतीय भाषाओं में प्रायोजित अनुवाद असमिया बंग्ला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, पंजाबी, तमिल, तेलुगु और उर्दू मे प्रकाशित हुए।

तकषी द्वारा लिखा गया अगला महत्त्वपूर्ण उपन्यास १९५९ में 'ओसेप्पिण्टे मक्कल' (औसेप के बच्चे) नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमे उन्होने केरल मे रहने वाले ईसाई समुदाय में विद्यमान गरीबों की कुंठाओं, समृद्धों की संवेदनाशून्यता, गरीबो के अनिवार्य सौजन्य और उनकी क्षमाशीलता का चित्रण किया है।

एक अन्य उपन्यास 'एणिप्पडिकल' १९६४ में आया। इसमे राजनैतिक परिदृश्य का चित्रांकन है—इस उपन्यास में महत्त्वाकांक्षा और कदम-ब-कदम शिखर पर चढ़ने का संघर्ष एक अप्रिय रोमांस के रूप मे विकसित हुआ है। सीढ़ी बहुत स्थिर नही है और अपरिहार्य त्रासदी घटित हो जाती है। यह तकषी का बहुत अधिक संवेदनशील अथवा मर्मस्पर्शी उपन्यास नही है, अपितु एक समाचार-पत्र के लिए विवेकपूर्ण और प्रभावशाली साप्ताहिक शृंखला है, जिसे बाद में संशोधित करके उपन्यास के रूप मे प्रकाशित कराया गया।

१९७८ तक, जब 'कॅयर' का प्रकाशन हुआ, जो मुझे आज तकषी की महान् कृति लगता है। बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थी लेकिन इस पर सूक्ष्म दृष्टिपात करने से पूर्व, हमें आज से पचास वर्ष पहले के तकषी के लेखन आरम्भ करने के समय के केरल के साहित्यिक परिवेश पर एक नजर डालनी होगी।

आज केरल का साहित्यिक परिदृश्य अत्यन्त मोहक है और कोई भी मलयाली इससे प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। केरल एकदम संकीर्ण एवं अन्तर्राष्ट्रीय; परम्परा से बँधा हुआ और प्रगतिशील; अलग-थलग एवं रमणीय; ग्रामीण, फिर भी शहरी है। इसके पाँव ज़मीन पर मजबूती से टिके हैं; लेकिन इसका शीश बादलों की ओर उठा हुआ है—एक चहरा भारत की मुख्य भूमि की ओर टिका है तो दूसरा समुद्र एवं पर्वतों के पार बाह्य संसार की दिशा मे।

यदि आप केरल की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को प्राचीन काल से आज के युग तक समझना चाहते हैं तो केरल की संरचना में द्विभाजन की स्थिति एक

नियो मे एक 'बाढ मे' उनके युवा मानवतावाद की रचना है। उन्हें लगभग पाँच सौ कहानियो की रचना करने का श्रेय प्राप्त है।

मानवीय संवेदना का आश्चर्यजनक क्षेत्र इन कहानियो के अन्तर्गत समोया गया है। यह स्पष्ट है कि तकषी की सहानुभूति गरीबों एवं दलितों के प्रति, बेघरबार लोगो तथा गंदी बस्तियो मे रहने वालों, सडक पर मारे-मारे फिरने वाले शरीफ़ लोगों के प्रति है, जिन्हे अविश्वास, निराशा व क्रूरता के बीच जीवन गुज़ारना होता है। यह जीवन का शुद्ध रूप है और तकषी में इस सबको व्यक्त करने तथा समझने की निजी शैली है, जो भावुकताविहीन है, मगर जिसमें पराजयवाद किंचित् भी नहीं है। वह हमारे सामने उस मानवीय दुर्दशा को प्रस्तुत करना चाहते हैं, जिनकी हम इसलिए उपेक्षा करते हैं कि हम उसका सामना करने से कतराते हैं। जॉर्ज ऑवेल्स के समान तकषी का लेखन एक चेतावनी है।

तकषी की कहानियों के विषादपूर्ण एवं सार्थक संसार में स्नेह और सावधानी, जीवन मे व्याप्त आश्चर्य, मानवीय जीवन और भोले-भाले पशुओं के मर्मस्पर्शी क्षण अंकित हैं। 'बाढ मे' मे नन्हे कुत्ते, 'कराव्येल निम्नू' मे दो मासूम बच्चों के प्रेम, 'नित्यकन्निका' की विषादपूर्ण दुर्दशा, 'पेनमाक्कल' में दो बहनों की अशुभ नियति, 'पट्टालक्करन' के अकेलेपन, 'मयुवाट्टिल' के मर्मस्पर्शी एक-तरफा प्रेम, 'कुरुतके चरितार्थ्यम्' मे नेत्रहीन की गहन रूप से अनुभव होनेवाली उदारता, सभी के प्रति लेखक का गहरा सरोकार रहा है।

तकषी अपने कथा-साहित्य मे चरित्रों के मनोभाव, स्वरों, स्थितियो को एक अथवा दो वाक्यांशों मे व्यक्त कर देते है। इसे देखकर कार्टर ब्रेसन के सम्बन्ध मे कहा गया यह वाक्य याद हो आता है कि कार्टर ब्रेसन जीवन के एक क्षण का अनुवाद इतिहास के रूप मे कर डालता है। तकषी 'ब्लेक' नहीं है, लेकिन वह हमें प्रति क्षण रेत के एक कण मे सम्पूर्ण संसार तथा एक घंटे में अनन्तकाल की झलक देने की क्षमता रखते हैं।

तकषी रेखाचित्राकन करनेवाले लेखक हैं। उन्होंने बत्तीस उपन्यास एवं लगभग पाँच सौ कहानियाँ लिखी है। उनके निबंधो, यात्रा-विवरणों तथा विविध लेखन का यहाँ उल्लेख नही किया गया है, मगर उनके समस्त लेखन मे आज तक कोई भद्दा वाक्यांश मेरे देखने नही आया है। श्री तकषी इस समय अपने जीवन के तिहत्तर वर्ष पार कर चुके है, मगर परिवर्तनशीलता एवं विकास उनके लेखन मे अभी भी विद्यमान है। विकास का अभिप्राय केवल उनकी रचनात्मकता से नहीं, अपितु उनके चरित्र से भी है। इस प्रकार की निरन्तर प्रवाहपूर्ण, इतनी अधिक तनावपूर्ण और खोजकारी लेखनी से की जा सकनेवाली आशा की कोई सीमा निर्धारित नही की जा सकती।

—नारायण मेनन

तकषी ने इस उपन्यास पर लगभग २० वर्ष तक काम किया। उन्होंने कई बार इसका पुनर्लेखन किया, संक्षिप्त किया, फिर उसका विस्तार किया; ऐतिहासिक तथ्यों, रूपाधारो, व्यक्तित्वों की जाँच तथा पुनर्जांच की। सब कुछ अनन्त धैर्य के साथ किया। पुस्तक कुछ हज़ार पृष्ठो मे मुद्रित हुई है (प्रथम संस्करण ६१० पृष्ठ, द्वितीय संस्करण १०४२ पृष्ठ)। 'कॅयर' का कथाकाल २०० वर्षों तक फैला हुआ है, इसमे छः पीढियो का अकन है तथा इसके चरित्रों की संख्या लगभग एक हज़ार है। इस उपन्यास के लिए तकषी ने केरल के एक ग्राम को चुना है और इसके धीमे किन्तु निष्ठुर विकास को उस प्रथम अधिकारी के आगमन, जो वहाँ २५० वर्ष पूर्व भूमि की सीमाएँ तथा स्वामित्व को चिह्नत करने एवं निर्धारित करने गया था, से लेकर आज के नक्सलवादी आन्दोलन तक चित्रित किया है। इसमे कोई नायक अथवा नायिका नही है, क्योकि वास्तविक नायक स्वयं वह गाँव है जो परिवर्तित होते समय के साथ जीवित रहता है, विकसित होता है तथा रूपान्तरित होता है। मरूमक्कतयम की भू-स्वामित्व वाले अभिजात के पुराने दिनों से, ब्रिटिशकाल और महाराजाओ के दिनों से गुज़रते हुए, मोपलाह विद्रोह, स्वतन्त्रतासग्राम, दो विश्वयुद्धों, स्वतन्त्रता एवं इसके परिणाम तक इस गाँव ने भुखमरी की पीड़ा भोगी है, अश्रु छलकाये हैं, और जब कभी अच्छी फसल हुई अथवा देवताओं की ओर से अनपेक्षित उपहार के रूप मे भाग्य उस पर मुस्कराया है, यह गाँव भी मुस्कराया है। इस दृश्य के एक भाग मे पुरुष एवं स्त्रियों को पीढ़ियों की समझ एवं सहानुभूति के साथ चित्रित किया गया है तथा उनकी पीड़ाओ और तकलीफों के रेखाचित्र निष्ठापूर्वक अंकित किये गये हैं। परिणामस्वरूप, कॅयर एक ऐसे विशाल प्रासाद का साम्य धारण कर लेता है, जिसका प्रत्येक भाग जीवन्त एवं स्पन्दन युक्त है।

'कॅयर' कोई ऐसा उपन्यास नही है जिसे जल्दबाजी मे देख लिया जाये और एक तरफ रख दिया जाये। इसे पढा जाता है और दुबारा बढा जाता है, आत्मसात् करके विचार किया जाता है जैसाकि इस प्रकार के आयमो वाले मानवीय दस्तावेज से सामना होने पर किसी भी व्यक्ति को करना होता है, और यह उपन्यास पाठक को ध्यान देने पर विवश करता है।

लेखक के रूप मे, तकषी की प्रतिष्टा एक उपन्यासकार के रूप में ही अधिक हुई है, लेकिन उनकी कहानियाँ—मात्रा एव गुणता दोनों मे, उन्हे समसामयिक मलयालम साहित्य मे विशिष्ट स्थान दिलाने की दृष्टि से प्रर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं। वास्तव मे, तकषी ने अपना लेखन कहानियों से ही प्रारम्भ किया था। पहली कहानी किशोरावस्था में प्रकाशित हुई थी, किन्तु प्रथम सकलन 'पुयुमल्हार', 'प्रतीपकल्' तथा 'प्रतिश्ता' केवल थोडे ही समय बाद प्रकाशित हुए। ऐसा नही था कि वह अपने लिए एक नई शैली की खोज मे लगे थे। उनकी सर्वश्रेष्ठ कहा-

११	नकलसवादी	नकसलवादी
	मरुमक्कतयम	मरुमक्कत्तायम
	मोपलाह विद्रोह	मोपला विद्रोह
	दुबारा बढा जाता है	दुबारा पढ़ा जाता है
	प्रतीपकल	प्रतीक्षकल
	प्रतिव्रता	पतिव्रता
	मंचुवाट्टिल्	मांचुवट्टिल्
	कुरुतके चारितार्थ्यम	कुरटंटे चारितार्थ्यम्

पाठकों से—

अंग्रेजी से हिन्दी मे अनुवाद होने के कारण भूमिका मे आये मलयालम के कतिपय संज्ञा शब्दो मे कुछ -उच्चारण-भेद आ गया है। पाठकों की सुविधा के लिए उन्हें यहाँ मलयालम उच्चारण के अनुसार दिया जा रहा है—

पृ.सं.	अशुद्ध	शुद्ध
३	चाम्पुस	चम्पू
	मुक्ताम	मुक्तक
	टी. एपुथाचन	तुचत्तु एपुत्तच्छन
	एपुथाचन	एपुत्तच्छन
	कचन नम्बियार	कुचन नम्बियार
४	वेनमनी	वेण्मणि
	नादुवम	राडुवम
	सीवोली	शीवोल्लि
	कयुल्लिल	कात्तुल्लिल
	कोदुंगल्लूर	कोडुंगल्लूर
	कन्हीक्कुट्टन थंपुरन	कुंजिकुट्टन तंपुरान
५	एल्लेपी	आलप्पी
	अवायापुपा, अंबाल पुपा	अंबलपुपा
	पेरीकुट्टी	परीक्कुट्टी
	कदकम्मा	करुत्तम्मा
	कं. बालकृष्णपिल्लै	ए. बालकृष्णपिल्लै
	पुधुमल्हार	पुतुमलर
६	अतियो पुक्कुकल	अडियो पुक्कुकल
	नित्यकन्निका	नित्यकन्यका
	तोट्टियुडे माकन	तोट्टियुडे मकन
	वादक्कंचेरी	वडक्कांचेरी
	रतिटंहसी	रडिडंहपो
७	पुलायार	पुलयर
८	करुत्तम्मा	करुत्तम्मा
९	रामू करियात	रामू कारियाट
	औसेप्पिन्टे मक्कल	औसेप्पिन्टे मक्कल

अनुवाद

डॉ० वी० डी० कृष्णन नंपियार

बाढ़ मे, एक मामूली फाँसी, लम्बा सफ़र, मुक्ति, विरासत, वाह रे सच्चरित्रवान !, अनाथ की मौत, बेटियाँ, ताडीखाने मे, बँटवारा, कराची से, नानी मर गयी।

डॉ० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर

तहसीलदार के पिता, अन्धे की धन्यता, किसान, मंगलसूत्र।

वी० के० हरिहरन् उण्णित्तान्

आम के पेड़ तले, पतिव्रता, फ़ौजी, वह लौट आएगा, चुकौती।

दो शब्द

मुझे ठीक याद नहीं कि मैंने कितनी कहानियाँ लिखी हैं। करीब आठ सौ होंगी। लगभग पाँच सौ कहानियाँ विशेषांकों और पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं। तीन सौ कहानियों की एक सूची अभी एक मित्र ने भिजवायी थी। उसमें ऐसी कई कहानियाँ नहीं आ पायी है, जो मेरे मन में स्थान पा गयी हैं, तब वह सूची अपूर्ण ही है।

इस संकलन में मेरी ऐसी कहानियाँ दी जा रही हैं जो मेरे प्रिय दोस्त ने चुनी हैं और मेरे आग्रह पर अनूदित की गयी है। साहित्य प्रवर्तक सहकारी संघ द्वारा प्रकाशित मेरी 'चुनी हुई कहानियाँ' (१९८५ में प्रथम संस्करण) में से फिर चुनाव करके बीस कहानियाँ इस संकलन के लिए ली गयी है, जो दृष्टि से १९३४ से १९८१ तक की अर्द्धशती में समय-समय पर लिखी गयी हैं। कुल २१ कहानियाँ इसमे जा रही हैं। इन्हे हिन्दी में लाने का श्रेय भारतीय ज्ञानपीठ और मित्र डॉ० वी० डी० कृष्णन् नम्पियार को जाता है।

पहले मैं कहानीकार के रूप में मलयालम में आया था। उसी समय मैंने उपन्यास भी लिखे थे। फिर भी पाठकों को मेरी कहानियों पर अधिक मोह रहा था। उपन्यासकार की मुहर वैसे बहुत जल्दी मुझ पर लग गयी और कहानीकार की अपेक्षा उपन्यासकार आगे चला गया। क्या आगे चला गया? दुनिया ही इसका निर्णय करे!

हिन्दी में मेरे कुछ उपन्यास पहले ही अनूदित हो गये हैं। हिन्दी की कई पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर मेरी कई कहानियों का अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। पर पुस्तक रूप में प्रकाशित मेरा प्रथम कहानी-संकलन यही है। भारत की राष्ट्रभाषा के द्वारा कहानीकार के रूप में मैं अब आप लोगों के सामने आ गया हूँ। मेरे प्रिय एक साहित्यिक-माध्यम से मेरा यह रंग-प्रवेश मुझे बहुत अधिक आह्लाद दे रहा है। इस संकलन की सभी कहानियाँ ग्रामीण जीवन पर आधारित है। यह जान-बूझकर किया प्रयास नहीं, मेरी सभी कहानियाँ ग्रामीण जीवन पर ही आधारित हैं। शायद, विविधता के लिए लिखी गयी कहानियाँ परखने पर भी, इस पृष्ठभूमि पर लिखी गयी कहानियाँ नहीं मिलेंगी।

अपने विशाल और सम्पन्न देश की राष्ट्रभाषा के पाठकों के समक्ष अपनी यह छोटी भेंट समर्पित कर रहा हूँ। यह एक जंगली फूल होगा, निर्गन्ध कुसुम होगा, पर भारतमाता के पूज्यपादों में अपने हृदय के साथ इसे अर्पित कर रहा हूँ।

तकषी —तकषी शिवशंकर पिल्लै

२२ अक्टूबर, १९८५

अनुक्रम

बाहर आया। चारों ओर देखा। उत्तर की तरफ बड़ी नाव जा रही थी। उसने जोर लगाकर नाववालों को पुकारा। नाववाले, सौभाग्य से, बात समझ गये। उन्होंने नाव झोंपड़े की ओर मोड़ी। चेन्नन् अपने बच्चों, पत्नी, कुत्ते और बिल्ली को एक-एक करके छप्पर से बाहर ले आया। तब तक नाव भी आ गयी।

बच्चे नाव पर चढ़ने लगे। "चेन्नन् भाई, सुनो जरा!" पश्चिम की ओर से कोई बुला रहा था। चेन्नन् ने मुड़कर देखा। "इधर आओ !!" वह कुंजप्पन था। अपनी मचिया पर से बुला रहा था। चेन्नन् ने पत्नी का हाथ पकड़कर उसे नाव पर बिठाया। उसी ताक में बिल्ली भी नाव पर चढ़ गयी। किसी को कुत्ता याद नहीं आया। वह झोंपड़े के पश्चिमी ओर इधर-उधर कुछ सूँघता फिर रहा था।

नाव चल दी।

कुत्ता छप्पर पर लौट आया। तब तक चेन्नन् की नाव दूर पहुँच गयी थी। वह मानों उड़ रही थी। कुत्ता मर्मान्तिक पीड़ा से किकियाने लगा। बेसहारे मनुष्य की-सी आवाज़ उसने दी। कौन था उसे सुनने को? झोंपड़े के चारों ओर फिरा। कहीं-कहीं सूँघा, और फिर किकियाया।

एक मेंढक आराम से मचिया पर आ बैठा था। यह अप्रत्याशित शोरगुल सुन वह डर गया और कुत्ते के सामने से पानी में कूद पड़ा, धुटीम्म्...। कुत्ता डरकर काँपने लगा और पीछे उचककर पानी को देखता रहा, पानी हिल रहा था।

शायद खाना खोज रहा होगा, कुत्ता इधर-उधर सूँघने लगा। कोई मेंढक उसकी नाक में पिशाब करके पानी में कूद गया। कुत्ते को बेचैनी में छींकें आने लगीं। वह सिर हिलाहिलाकर छींका। फिर आगे के पैर से मुख पोंछ लिया।

मूसलधार वर्षा फिर शुरू हो गयी। कुत्ता उकडूँ बैठकर सहता रहा। उसका मालिक अंपलप्पुपा पहुँच चुका था।

रात हो गयी। एक भयंकर घड़ियाल पानी में अधडूबी झोंपड़ी को छूते हुए धीरे-से बह गया। कुत्ता भय से पूँछ हिलाते हुए भौंका। घड़ियाल बह गया मानों कुछ नहीं जानता हो।

मचिया पर उकडूँ बैठा कुत्ता भूख से पीड़ित हो, काले बादलों और अँधेरे से युक्त वातावरण को देख किकिया उठा। उसकी दीनता भरी रुलाई दूर तक सुनायी दे रही थी। सहानुभूति से पवनदेव उसे लेकर आगे बढ़े। घर की रखवाली करनेवाले कुछ हृदयालुओं ने कहा होगा—हाय! छत पर बैठा कुत्ता किकिया रहा है! समुन्दर के किनारे उसका मालिक उसी रात का खाना खा रहा होगा। खाना खत्म करके उसने अपने कुत्ते के लिए आज भी मुट्ठी-भर भात अलग रख छोड़ा होगा।

कुत्ता कुछ देर तक लगातार ऊँचे स्वर में किकियाता रहा। फिर आवाज़

बाढ़ में[1]

गाँव में ऊँचे स्थान पर एक मन्दिर है। वहाँ देवता गले तक पानी मे डूबा खड़ा है। पानी। सब कही पानी-ही-पानी है। सभी गाँव-वाले बसेरा ढूँढने चले गये हैं। जिसके घर नाव है उसके यहाँ घर की रखवाली के लिए एक आदमी रह गया है। मन्दिर की तीन कमरोंवाली छत पर सड़सठ बच्चे थे। तीन-सौ-छप्पन लोग, कुत्ता, बिल्ली, बकरी, मुर्गा जैसे पालतू जानवर भी। सभी एक जुट होकर रह रहे थे। कोई झगड़ा नही था।

चेन्नन्[2] को पानी मे खड़े एक रात और एक दिन हो गया। उसके नाव नहीं है। उसके यजमान को प्राण लिये किनारे पहुँचे तीन दिन हो गये। जब पानी झोंपड़े के अन्दर पहुँचने को हुआ तो टह-नियों और लट्ठों से ताक और मचिया बना ली थी। यह सोचकर कि पानी जल्दी उतर जाएगा, वह दो दिन तक उसी पर बैठा रहा। अलावा इसके चार-पाँच केले के गुच्छे और फूस का अम्बार भी तो था। वहाँ से चल दिया तो सारी चीजें कोई चालाक उड़ा ले जाएगा।

अब तो ताक और मचिया पर भी घुटनों पानी है। छप्पर छाने-वाले नारियल के पत्तो की दो पंक्तियाँ पानी के नीचे हैं। अन्दर से चेन्नन् चिल्लाया, पर सुनेगा कौन ? पास है कौन ? गर्भवती पत्नी, चार बच्चे, एक बिल्ली और एक कुत्ता—इतने प्राणी उसी पर आश्रित हैं। उसे निश्चय हो गया कि झोपड़े के अन्दर से पानी निकलने में तीस घण्टे से कम नही लगेंगे। अब तो अपना व परिवार का अन्त आसन्न है। मूसलधार वर्षा तीन दिनो से लगातार हो रही है। झोपड़े के ऊपर के नारियल-पत्ते हटाकर चेन्नन् किसी प्रकार

---

१. वेल्लप्पोक्कत्तिल्

२. हरिजन जाति का एक व्यक्ति।

लाश पर उतरा, जो एक मोटे भैंसे की थी। चेन्नन् का कुत्ता चाव.से उसे देख-कर भौंक उठा। कौआ भैंसे का मांस चिकोटने लगा था। फिर संतुष्ट होकर वह भी उड़ गया।

एक हरी चिड़िया झोपड़े के पास खड़े केले के पेड़ पर आ बैठी और चहकने लगी। कुत्ता बेचैन होकर फिर भौंका। वह चिड़िया भी उड़ गयी।

पहाड़ों से बहे आ रहे पानी पर चीटियों का एक झुण्ड था, जो जाकर झोंपड़े से अटक गया। फिर बच गया। खाने की चीज समझकर कुत्ता उसे सूंघने लगा। वह एकदम छींक उठा, उसका मुलायम चेहरा लाल होकर थोड़ा-सा सूज गया।

दोपहर बाद, एक छोटी नाव मे दो आदमी उस तरफ आये। कुत्ता दुम हिलाकर उन्हें देख भौंकने लगा। वह अपनी भाषा में कुछ बोला, जो मनुष्य की भाषा-जैसी थी। पानी मे उतरकर नाव पर चढ़ने को वह तैयार खड़ा था। "देख, एक कुत्ता खड़ा है!" उनमे से एक ने कहा। कुत्ता एक बार फिर किकियाया, मानों वह उनकी सहानुभूति का आभार प्रकट कर रहा हो। "वहीं रहने दे।" दूसरे आदमी ने कहा। कुत्ता मुंह बन्द करके कुछ बोलने लगा, एक-दो बार उस ओर लपकने का प्रयास भी किया।

नाव दूर चली गयी। कुत्ता और एक बार किकियाया। नाववालों मे एक ने मुड़कर देखा।

"हाय !"

यह नाववाले की नही, कुत्ते की आवाज थी।

"हाय !"

उसकी थकी-मांदी और हृदयस्पर्शी दीन रुलाई दूर हवा मे विलीन हो गयी। फिर लहरों का अनन्त नाद। किसी ने फिर मुड़कर नही देखा। कुत्ता उसी तरह, नाव के गायब हो जाने तक खड़ा रहा। वह भौंकता हुआ मचिया पर चढ़ गया मानो कह रहा था कि अब दुनियाँ से अन्तिम विदा ले रहा है। शायद कह रहा हो कि वह आगे कभी किसी मनुष्य को प्यार नही करेगा।

उसने थोड़ा पानी पिया, फिर ऊपर उड़नेवाली चिड़ियों को देखा। लहरों मे बहता हुआ एक साँप उसके पास आया। कुत्ता झट से मचिया पर जा पहुँचा। चेन्नन् और परिवार जिस सेंध से बाहर निकले थे, उसी से साँप अन्दर रेंग गया। कुत्ते ने सेंध की ओर झांका। वह फिर भौंकने लगा। फिर किकियाया। उसमें प्राणों का डर और भूख दोनों मिल गये थे। वह भाषा कोई भी भाषा-भाषी, यहाँ तक कि ग्रहवासी भी समझ सकता था। इतनी संवेदनशील थी उसकी भाषा।

रात हो गयी। भयंकर तूफान आया। वर्षा हुई। छप्पर पानी के थपेड़ों से हिल-डुल रहा था। दो बार कुत्ता ऊपर से नीचे गिरने को हुआ। एक लम्बा

मन्द होकर बन्द हो गयी। उत्तर की दिशा में कोई अपने घर बैठे रामायण बांच रहा था। कुत्ते ने उस तरफ देखा, मानों वह उसे सुन रहा हो। वह गला फाड़कर दूसरी बार भी थोड़ी देर किकियाया।

निस्तब्ध निशीथिनी मे मधुर स्वर में रामायण-पाठ एक बार और सुनाई पड़ा। कुत्ता कान लगाकर देर तक उसे सुनता रहा। शीतल पवन मे वह शान्त मधुर गान घुल-मिल गया। हवा के झोंके और लहरो की आवाज़ को छोड़ और कुछ सुनाई नही पड़ा।

मचिया के सबसे ऊपर चेन्नन् का कुत्ता लेट गया और लम्बी सांसें लेने लगा। बीच-बीच में निराश होकर किकियाता भी रहा। तभी मेढक ने छलांग लगायी। कुत्ता फिर बेचैन हो उठा।

सवेरा हो गया। कुत्ता धीमी आवाज मे फिर किकियाने लगा। उसने हृदयविदारक राग छेड़ा। मेढकों ने उसे घूरकर देखा। पानी की सतह पर उछलते-कूदते मेंढकों को वह एकटक देखता रहा।

पानी के ऊपर दीखते झोपड़े के पत्तों को उसने आशा से देखा। सब ओर विजन! कही पर चूल्हा भी नहीं जल रहा था। कुत्ता उन मक्खियो पर लपक रहा था जो उसके शरीर को खुशी से काट रही थी। पिछले पैरो से चिबुक को बार-बार खुजलाकर वह मक्खियो को भगाने लगा।

थोडी देर के लिए सूरज निकला। सवेरे की धूप में वह थोड़ा सोया भी। उस केले के पत्ते की छाया मचिया पर पड़ रही थी, जो मन्द पवन में हिल-डुल रहा था। कुत्ता उस पर भी लपक उठा। वह एक बार फिर भौंका।

बादलों से सूरज छिप गया। सब कही अँधेरा। हवा ने पानी को तरंगित कर दिया। पानी की सतह से जानवरों की लाशें बह रही थी। लहरों में पड़कर उनका प्रवाह और तेज हो गया था। वे जहाँ कही स्वच्छन्द बहती जा रही थी। कुत्ते ने चाव से उन सबको देखा और फिर किकियाने लगा।

दूर कही कोई छोटी नाव तेजी से जा रही थी। वह उठकर दुम हिलाने लगा। उस नाव की गति देखने लगा, पर वह जल्दी ही छिप गयी।

पानी बरसने लगा। कुत्ते ने उकडूं बैठकर चारों ओर देखा। उन आँखों मे किसी को भी रुलानेवाली निस्सहाय स्थिति प्रतिफलित हो रही थी।

पानी बन्द हो गया। उत्तर के घर से एक छोटी नाव आयी और एक नारियल के पेड़ के पास रुक गयी। कुत्ता दुम हिलाते और जम्हाई लेते हुए किकियाया। नाववाला नारियल के पेड़ पर चढ़कर कच्चे नारियल तोड़ने के बाद नीचे उतरा। वह नाव पर ही नारियल का पानी पीकर डाड ले नाव खेने लगा।

दूर किसी पेड़ की डाली से एक कौआ उड़कर आया और उस सड़ी-गली

थोड़ी देर बाद वह झोंपडा गिर पडा और पानी में डूब गया। उस अनन्त जलराशि पर कुछ दिखायी नहीं पडता था। अपने मालिक के घर की रखवाली उस वफादार कुत्ते ने आखिरी दम तक की। वह चला गया। पर झोपड़ा तब तक पानी की सतह पर खड़ा रहा, जब तक उस कुत्ते को मगर नहीं पकड़कर ले गया। अब वह झुककर पानी में पूर्णतः डूब चुका था।

× × ×

पानी उतरने लगा। चेन्नन् कुत्ते की खोज करता हुआ वहाँ आया। किसी नारियल के पेड के नीचे कुत्ते की लाश पड़ी हुई थी। लहरें उसे धीरे-से चला रही थी। पैर के अँगूठे से चेन्नन् ने उसे हिलाया, उसे उलटकर देखा। उसे निश्चित नहीं हो सका कि यह उसी का कुत्ता है। उसका एक कान कट गया था। खाल सड जाने से रंग का भी पता नहीं चल रहा था।

सिर पानी के ऊपर उठा। वह एक मगर था। कुत्ता प्राण-पीड़ा से भौंकने लगा। पास ही कहीं मुर्गियों की एक साथ रोने की आवाज सुनाई दी।

"कुत्ता कहाँ से भौंक रहा है? यहाँ से लोग गये नहीं क्या?" केले के पेड़ के पास एक नाव आयी जो फूस, नारियल और केलों से भरी हुई थी।

कुत्ता नाववालों की ओर मुड़कर भौंकने लगा। वह क्रुद्ध होकर, पूँछ उठाए, पानी के पास गया और फिर भौंका। नाववालों में से एक केले के पेड़ पर चढ़ गया।

9407
3-5-68

"भई, लगता है कि कुत्ता लपकेगा।"

कुत्ता आगे की ओर लपका भी। केले पर से वह आदमी गिर पड़ा। दूसरे ने उसे हाथ देकर नाव पर चढ़ाया। इतने में कुत्ता तैरकर मचिया पर जा पहुँचा और शरीर झटकारते हुए क्रुद्ध होकर भौंकने लगा।

चोरों ने केले के गुच्छे काट लिये। "तुझे मिल जाएगा।" गला फाड़ भौंक रहे कुत्ते से उन्होंने कहा। फिर उन्होंने फूस नाव में डाला। अन्त में एक आदमी मचिया के ऊपर चढ़ा तो कुत्ते ने उसका पैर काट लिया। कुत्ते के मुँह में मांस भर गया। "हाय!" वह आदमी रोते हुए कूदकर नाव पर जा चढ़ा। नाव में खड़े आदमी ने डाँड लेकर कुत्ते के पेट पर दे मारा।

"कैं—कैं—कैं!" कुत्ते की आवाज मन्द पड़ गयी। जिसे कुत्ते ने काटा था वह नाव पर रो रहा था।

"अरे! चुप रह, कोई···" दूसरे ने उसे ढाढस बँधाया। वे आगे बढ़ गये।

बहुत देर बाद कुत्ते ने उस ओर देखा और भौंका, जहाँ से नाव चली गयी थी।

आधी रात के करीब का समय। एक मोटी गाय की लाश बहती हुई झोंपड़े से आ लगी। कुत्ता उसे ऊपर से देख रहा था। वह नीचे नहीं उतरा। लाश धीरे-धीरे बहने लगी। कुत्ता किकियाया। नारियल के पत्ते को छीला। दुम हिलायी। अलग हट रही गाय की लाश के पास गया और दाँतों से उसे पास खींचकर खाने लगा। भयंकर भूख मिटाने को उसे काफी भोजन मिल गया था।

'ठें' एक प्रहार! कुत्ता दिखायी नहीं पड़ा। गाय की लाश थोड़ी डूबकर बह गयी।

तब से सिर्फ तूफान की गर्जन, मेढक की टर्र और लहरों की आवाज़ ही सुनाई दे रही थी। और कुछ नहीं। सब ओर सन्नाटा! घर की रखवाली करनेवाले लोगों ने फिर कुत्ते की दारुण रुलाई नहीं सुनी। सड़ी-गली लाशें जल की सतह पर इधर-उधर बह रही थीं। किसी पर बैठा कौआ माँस नोच-नोचकर आराम से खा रहा था। कोई बाधा रुकावट नहीं। चोरों को भी अपने काम में व्यवधान नहीं पड़ा। सभी ओर एकान्त!

दो चपरासी बाहर बत्ती लिये खड़े थे। जेल के घण्टे के शोकपूर्ण स्वर ने उस चुप्पी मे कुछ लहरें पैदा की। धीरे-धीरे वह बन्द हो गया। फिर शान्ति! उस उत्साहपूर्ण वेला मे मुझे लगा कि मेरे हृदय के नीचे कोई चीज कुलबुला रही है। जाडे की सुबह की ठण्ड से मेरी चिबुक और दाँत आपस मे टकराये। मैंने अँगडाई लेकर एक जम्हाई ली। आधा मन वहाँ जाने से मुझे रोक रहा था। फिर भी डॉक्टर के साथ मैं बाहर आया—डर और जिज्ञासा युक्त बाल-सहज हृदय के साथ। मेरा हृदय धडक उठा।

जेल की ऊँची और मजबूत दीवारो से सुरक्षित एक कमरे के बाहर हम जाकर खडे हो गये। उस कमरे का दरवाजा खुला हुआ था। सफेदी से पुती दुधिया गयी दीवार। एक खिड़की तक नही वहाँ। कमरे के बीच बिछी दरी मे एक बत्ती के सामने एक नरककाल खडा था। उसकी रोम-भरी छाती पर सुगंधित लेप किया हुआ था। उसने जेल की लुगी पहन रखी थी, जो नीचे घुटनो तक लम्बी थी। मैं ठण्ड से सिहर उठा। उसकी दायी-बायीं ओर दो सिपाही तैनात थे। विशिष्ट भोज्यो, खीर आदि से युक्त अन्तिम भोजन लेने के बाद उस बेचारे का पेट घनी सासो के ऊपर-नीचे होने से फूला हुआ था।

वे आँखें! मैंने उनमे आंसू नही देखे। वे मामूली ढग से फड़क रही थी। समय सवा छ. बजे! मुझे लगा कि वह आदमी काँप उठा है। शायद सिर्फ मुझे लगा होगा। एक महीने पहले उसे तारीख बतायी गयी थी। उस दिन से प्रति-पल वह कितनी बार मर रहा है, कितनी बार जनमा होगा वह! झगडालू पत्नी से कितनी बार शादी की! 'बायें गाल पर कोई थप्पड़ लगाये तो दायाँ गाल कर दे' वाले तथ्य को आदर्श मानकर जिया। हाय! एक पत्नी को मार डालने के लिए! कितनी पत्नियो से प्यार किया! मानव-गुड़िया मात्र बनकर जिया। इतना काफी नही क्या? उसने प्यार करना तो सीखा। उसने क्षमा और विनम्रता सीखी। वह तो पवित्र हो गया। उसमे जो मिलावट थी, वह धुआँ बनकर उड गयी। खैर··· उस अन्तिम रात को पत्नी के धड़ से अलग हुए सिर को फिर से चिपकाकर उसने उसके कानो मे मृतसजीवनी मन्त्र का जाप किया था।

समय सवा छह बजे! किसी के पैर की आहट—उसे लगा होगा कि उसकी पत्नी यह कहकर कि 'मैं मरी नही' अन्दर आ गयी और उसे बचा लिया है।

समय साढ़े छह बजे। उस माया-भ्रम से जागकर उसने अपना स्थान और गति जान ली होगी। क्या आप निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि उसने जेल की खपरैल हटाकर बाहर आने के लिए उस चिकनी दीवार पर चढने की कोशिश नही की थी? मातृविहीन बच्चा—अपने बच्चे को कब उसने अन्तिम बार प्यार-दुलार दिया था, वह याद करने···समय पौने सात बजे। अब सिर्फ बारह घण्टे बाकी—यानी ६६० मिनिट। छि—क्या उसने ६० × ११ = ६६० का गणित

एक मामूली फाँसी[1]

मेरे दोस्त ने कहा :
समाज की यह खास आदत है कि उसे नियमो (कानून) के प्रति आदर और आस्था हो और नियमो का उल्लघन करनेवालो से घृणा और नफरत। नियमो के वचन बहुमत की राय होते हैं। समाज मे रहनेवाले मनुष्य को बहुमत की राय से भिन्न राय होना साधारण नही। उस समाज के क्रुद्ध और प्रचण्ड अहसास को हलका बनाने की वह भी कोशिश करता। पर नियमोलघक खूनी को, उसके डरावने और असाधारण मुखभाव, रूखे-बिखरे बालो, बढी हुई मूंछ, निराशा भरी अनास्था को सूचित करनेवाले मलिन एव विकृत कृशगात्र से युक्त बदी रूप मे देखे, तो मनुष्य मे अपना व्यक्तित्व सिर उठाता है। एक बार डर और अमर्ष के कारण दाँत पीसकर जिसे देखा हो, उसे ही सामने पाकर आँसू बहाएगा। मनुष्य पर अपने खुद का अत.करण, विवेचन-शक्ति और विकार एकान्त मे ही शासन करते है। दूसरे अवसरो पर, समाज के बहुमत के सामने उसका आत्मनियन्त्रण नष्ट हो जाता। आत्म-स्नेह की अधिकता से ही फूट कर बैठता है। खूनी को देखकर वही रोता है—इसी आत्म-स्नेह के कारण। यह विचार कि 'मुझे ऐसा···' हृदय मे छोटी तरगें पैदा करता है। खूनी से उस व्यक्ति का ऐक्य हो जाता है। उसमे वह अपना रूप देखता है। यानी एक ही विकार दोनों मे रुड़बढ हो जाता है।

दोस्त ! मैंने जो कुछ कहा, वह अपने अनुभवो के आधार पर है। मैंने पिछली······तारीख को सेन्ट्रल जेल मे एक आम घटना देखी। मेरा दोस्त डॉ······ने मुझे सुबह चार बजे जगाया। जेल के

१. ओरु साधारण तूक्किक्कोल

विश्वास रखा। दोस्त! मुझे आश्चर्य हुआ। यह जिन्दगी किसी मनुष्य की दी हुई नहीं ·····उसका अन्त करने का किसे हक है? खूनी की कितनी अपनी इच्छाएँ होंगी? इतने मूल्यवान और वजनदार जीवन को एक छोटा-सा कागज का सादा टुकड़ा, जो कि मन्द पवन में उड़ जाता है, एक पैसे का मूल्य रखता है, नष्ट कर देता है···उस कागज की शक्ति! 'मैं फैसला देता हूँ।' वह उस चीज को नष्ट कर देता है, जो उसकी नहीं।·····वह जज उस बेचारे को न जानता है, न उसने सुना है। 'मैं फैसला देता हूँ।' उस फैसले में मैंने एक ऐसे आदमी को देखा, जो यह जानने पर कि उसकी पत्नी के भी गुप्त प्रेमी हैं, उसका सिर काटने की इच्छा और क्रोध को जीत चुका हो। वैसे छह आने का कर देनेवाले उस बेचारे के जीवन को एक पराया और सरकारी अफसर जज···जरा सोचो, दोस्त!

उसने गला फाड़कर दो-तीन बार कफ निगला। 'गर्भस्थ होकर भूमि पर जन्मा और मृत्यु तक अस्थिर रहा' वाली कविता की पंक्ति भर्राये स्वर में गाने लगा। मैं अपने आँसुओं को रोक नहीं पाया। तभी उस पंक्ति का अर्थ और महत्त्व मेरी समझ में आया था। सन्ध्या को, दीये के सामने बैठे दादा-परदादा इस पंक्ति को गाया करते थे। कवि इसके द्वारा तथ्य को मधुर पदों में व्यक्त करते हैं। जन्मा है तो मरना भी है। जन्म के साथ मृत्यु भी है—सिर्फ इतना ही मैंने समझा था। कवि की पंक्तियों को मैं भी, जरूरत पड़ने पर, तोते के समान रटा करता। पर अब उस पंक्ति का अर्थ मैं करने लगा। उससे सम्बद्ध प्रश्नों को मैंने स्वयं से पूछा। दार्शनिक, कवि, दादा—किसी ने इस तथ्य का जीवन में स्वयं अनुभव नहीं किया। कोई मरता तो, उन पंक्तियों को गाते, बस। कोई गिर जाता तो हम कहते कि नीचे कीचड़ थी, इसलिए गिर पड़ा। इसी प्रकार आज उसे वह सारा तथ्य महसूस हो गया होगा। तभी तो उसे सुनने से मैं भी उसकी गहराई तक जा सका।

'नारायणाय नमः, नारायणाय नमः······' उसकी थरथराती ऊँची आवाज ने वहाँ की परम निश्चलता को चीर डाला। बीच-बीच में उसे कफ आता रहा। जब उसे कमरे के बाहर लाया गया तब भी उसने मुझे देखा। मुझे लगा कि वह मुझसे कह रहा है 'मैं जाऊँ!' 'नारायणाय नमः, 'नारायणाय नमः···।' तभी घण्टा बजा। उसने नाम-जपना खतम किया। मैंने लम्बी साँस ली। एक चिड़िया बाहर रो उठी। उसने पीछे मुड़कर देखा। रक्षा-मार्ग! मेरी लम्बी साँस और चिड़िया की रुलाई ने उसे विभवसमृद्ध दुनिया की ओर आकृष्ट किया होगा।

उसका पैर फाँसी के तख्तवाले कमरे की सीढ़ियों से टकराया। उसने झुककर देखा। नदी में डूबनेवाला, जैसे वर्षा से बचने छाता उठाता हो।······ उसने पैर क्यों देखा? हाँ, वहाँ भी आत्म-रक्षा की भावना ने काम किया होगा।

सीखा था ? अपने छोटे से जीवन के मील-पत्थर;······हर पन्द्रह मिनट के बाद का घण्टावाद। हाय ! कल की रात उसने कैसे काटी होगी ? साँस रोककर··· दम घुटकर मरने की कोशिश की होगी—क्या पता ? आत्महत्या मे उतनी पीड़ा नही जितनी दूसरे के द्वारा मारे जाने मे होती है। उससे बडी सजा ही क्या है ?

उसने हमारी तरफ अपना मुख मोड़ा। उसने एक बार मुझे ध्यान से देखा भी। निन्दा से मानों पूछ रहा था, "तू इधर क्यों आया ? क्या तू मुझे बचा सकता है ? तुच्छ कीट !" उन नेत्रो मे एक सवाल प्रतिफलित हुआ, जिनमे अवर्णनीय सीकरद्युति मिली थी। मैंने उसे खून करते देखा था। मरघट मे खड़ा होकर बैताल-नृत्य कर रहा था वह। मैंने उसके लाल नेत्र और डरावनी दृष्टि की याद की। क्या उस समय वह होश मे था, जब उसने अपनी पत्नी का सिर काटा था। काँपते सिर को अपने हाथ मे पकड, चाकू से उसे काटकर टुकडा-टुकड़ा कर दिया था, खून की नदी में उसने डुबकियाँ ली थी···उसे इन सबकी याद नही होगी। शायद वह गवाही दे कि ऐसा कुछ भी उसने नही किया था। उसके जीवन चरित मे हत्या के पहले की घटना के तुरन्त बाद कोई मामूली-सी घटना हुई होगी। दोस्त ! उसकी अभय-याचना मे अपना निरपराधी होने का बोध था। खुद के न्यायवाद या अन्य किसी आधार के अभाव मे माफ़ी या मुक्ति की प्रार्थना नही होगी। अपने कर्मो का ढाँचा जो नही जानता, उसने क्या परिस्थितियों को देखा होगा ? पास खड़े मुझे उसने नही देखा होगा। हम अपरिचित भी हैं। फिर वह मुझे ही क्यो घूर रहा है ?

जेल-अधीक्षक कमरे में आये। उसने उनसे एक कप ब्राँडी माँगी। अन्तिम इच्छा ! उस गरीब आदमी को अब तक महँगी ब्राँडी चखने का अवसर न मिला होगा। सिर्फ़ वही एक चाह रह गयी थी—एक गिलास ब्राँडी। उसका सबसे प्रिय पेय, शराब रहा होगा। 'हुँ, रामन को दो रुपये दे, जो उसे देना है। तभी ब्राँडी पिऊँगा' ऐसी उसने खुद को सांत्वना दी होगी। थोडी देर बाद उसे एक गिलास ब्राँडी दी गयी। वह उसे पूरी पी गया। आत्मरक्षा की आसक्ति, मनुष्य की सभी प्रवृत्तियों का मौलिक हेतु है, नैसर्गिक वासना है। उसके पेट में तब भी खाना पचता नही क्या ? क्यो ? पौष्टिक तत्त्व शरीर में मिलकर ·· अब किसलिए ? शरीर में खून का प्रवाह···सब है।

अधीक्षक ने जेब से कोई कागज लेकर पढना शुरु किया। वह जज का फ़ैसला है। अन्त मे, 'साइण्ड दिस डे······कुम्भम्······सो एण्ड सो······जज' पढ़कर पूरा किया। उसी क्षण, दोनों तरफ खड़े सिपाहियो ने प्रणाम करते उन हाथों को पीछे करके बाँध दिया। सब कुछ बिजली के वेग मे। वे हाथ, जो ईश्वर को प्रणाम करते थे······उसने ईश्वर को पास से देखा। उनकी करुणा पर

लम्बा सफ़र

गाँव मे वह एक नया दृश्य था। एक-बैलवाला इक्का। उसकी कुछ अपनी विशेषताएँ थी। हमारे गाँव मे साधारणतया दिखायी देनेवाला इक्का नही था वह। लडके उसके पीछे पड़ गये। बड़ों को भी वह दृश्य मजेदार लगा था। जैसे कोई अजीब प्राणी हो, जो अपनी जात से कटकर आ गया हो।

लाल कुर्ता और लहँगा पहने एक बूढी गाड़ी चला रही थी। उसने अपने सिर पर एक रूमाल बाँध रखा था। उसकी दायी तरफ एक बूढा बैठा था। लम्बे सफर से थक गये थे वे दोनो। अपनी मंजिल तक की दूरी कितनी है, यह वे नही जानते थे। मानो वे स्वय पूछ रहे थे कि अभी और कितनी दूरी तय करना है। पता नही, उनकी मंजिल कहाँ है ?

वह बैल बहुत दिनो से उस गाडी को खींच रहा था। कई मील का सफर वह पार कर चुका था। वह भी थक गया था। उम्र भी काफी हो गयी थी। उन्ही की तरह वह जानवर भी वह सवाल पूछ रहा था क्या ?

उसके सभी बाल गिर चुके थे। शरीर पर इधर-उधर घावों के निशान बन गये थे। हड्डियाँ उभर आयी थी। पैर ठीक से जमते नही थे।

गाड़ी बहुत धीमी चली जा रही थी।

साँझ हो चुकी थी। सडक के किनारे एक बड़ा-सा पेड खडा था। उसके पास पहुँचा तो बूढा गहरे मौन मे खो गया। बूढ़ी ने गाडी रोक दी।

दोनो नीचे उतरे। बूढे ने बैल को खोलकर उस पेड से बाँध दिया। फिर गाडी के पीछे लटकी बोरी से फूस लेकर बैल के आगे खाने डाल दिया।

वह कमरा सबसे तंग अँधेरी कोठरी थी। बीच में करीब चार फुट लम्बा-चौडा और एक फुट ऊँचा चबूतरा। आठ फुट ऊँचे शहतीर से एक रेशमी रस्सी लटकी हुई थी। चबूतरे पर चार काले कलूटे मोटे आदमी खड़े थे। घुंघराले बाल, आग-सी आँखें और भयानक चेहरा....नारायण! सचमुच ऐसे ही यमदूत होते होंगे।

वह उस तख्त के नीचे खड़ा हो गया। एक बार और उसने गले को ठीक किया। उस कोठरी के धुंधले प्रकाश में मैं उसका चेहरा देख नही सका। किसी ने साँस तक नही ली। तभी विश्वयन्त्र स्तम्भित हो गया था। एकदम खामोशी! उन चारों में से एक ने आकर उसका हाथ पकडा और तख्त पर चढ़ाकर ठीक जगह खड़ा कर दिया। दूसरे ने मुख को ढकने वाला कपड़ा पहनाया। तीसरे ने रस्सी का फंदा उसके गले पर डाला। क्षण—एक—दो—कही से एक छिपकली बोली। चौथे आदमी ने एक कदम आगे रखा। उसके पैरों की उँगली झटकी। सब ओर से निश्चल मौन। क्षण—तीन—मेरा दिल धड़का। 'मेरा बच्चा....' उसका विलाप। 'टिक्' का शब्द। मेरी आँखें स्वतः बन्द हो गयीं। एक क्षण और! वह दिखाई नही पड़ा। यन्त्र काँप रहा था।

आत्मरक्षा की आसक्ति के कारण ही जन्म के समय बच्चा रोता है। उसी प्रवृत्ति से वह यन्त्र भी चालित होता। 'मेरा बच्चा'....गर्भस्थ होकर 'जन्मने और मरने' वाला तत्त्व उसने भुलाया होगा।

था। वह गाड़ी पुरानी हो गयी थी। गाँठें पुरानी पड़ गयी थीं और कीलों के ढीले हो जाने से हिलने-डुलने लगी थी। पता नहीं, अब कितने दिन और चलेगी!

उस रिश्ते का एक इतिहास रहा होगा। सालों पहले सुदूर ईरान के गुलाब के बाग में किसी वासंती रजनी में एक-दूजे को दिए वचन को दोनों ने आज तक तोड़ा नहीं होगा या उस उत्साहवती औरत ने गलती नहीं की होगी। वह भी यौवन की पुकार का गुलाम हो गया होगा। फिर भी दोनों सब भूल गये होंगे। ईरान के आम रास्ते से बिजली की तरह दौड़ी आयी इस गाड़ी के अन्दर से आशा-भरी हँसी और निरर्थक पुकार सुनाई पड़ी। एक तगड़ा बैल सिर हिलाता भागे जा रहा था। अफगानिस्तान के पहाड़ों गड्ढे उस गाड़ी को उत्कण्ठाओं से प्रभावित करते रहे। तब वे अधेड़ उम्र के थे। भारत के लू-भरे विशाल समतलों से होकर तपती धूप में वे आगे बढ़े। उनको जो कुछ कहना था, कह डाला। वे बूढ़े हो चुके। फिर भी एक-दूसरे को देखकर अघाते नहीं थे। वह गाड़ी धीमी-धीमी गति से चल रही थी।

अगली सुबह बूढ़ा और बुढ़िया उसी पेड़ के नीचे अपने बैल को देखते हुए दिखायी दिये। वह मर गया था।

वहाँ बहुत-कुछ लोग जमा हो गये। सबने उनसे सहानुभूति प्रकट की। पर लगा कि बूढ़े-बुढ़िया को जरा भी कष्ट नहीं हुआ था। दोनों कुछ याद कर रहे थे।

लोगों में से एक ने दूसरे से पूछा, "अब ये दोनों क्या करेंगे? कैसे खींचेंगे वह गाड़ी?"

दूसरे का उत्तर था: "मैं भी यही सोच रहा था। शायद गाड़ी को यहीं छोड़कर चल देंगे।"

"अपना सामान कैसे ढोयेंगे ये?"

"क्या पता दूसरा बैल खरीदेंगे शायद।"

"उनके बस की बात नहीं।"

कुछ देर तक कोई नहीं बोला। फिर किसी ने दूसरे से पूछा:

"इन्हें जाना कहाँ है?"

"पता नहीं।"

पेड़ की छाया में बैठे बूढ़े ने थोड़ी दूर बैठी बुढ़िया को, जो दूर कहीं देख रही थी, कुछ देर ध्यान से देखा। उसकी आँखें नम हो गयीं। बुढ़िया ने लम्बी साँस छोड़कर बूढ़े की ओर देखा। गद्-गद् होकर उसने कुछ कहा। बुढ़िया की आँखों से आँसू टपक पड़े।

ऊपर की ओर देख हाथ जोड़ते हुए उसने भी कुछ कहा। बूढ़ा सिर झुकाकर रोने लगा। बुढ़िया ने पास जाकर, पीठ पर हाथ फेरकर उसे ढाढ़स बँधाया।

वह एक घर था। घड़ा और खाना पकाने के बर्तन थे। एक पुरानी संदूक भी। दो तीन चटाई भी बाँध रखी थीं। उसके अन्दर एक बिल्ली सो रही थी। तीन-चार बोतलें और एक बाल्टी ऊपर लटकी हुई थी। गाडी के ऊपर एक मुर्गा गर्दन उठाकर चारो ओर देख रहा था।

रास्ते के किनारे छोटे-से चूल्हे की रोशनी मे कोई मनुष्य-नुमा झलक बैठी हुई थी। आग धधक उठती तो उसका मुख दिखाई दे जाता। कभी वह एक छाया-सी लगती। निश्चल मूर्ति के समान वह बैठी हुई थी।

शान्ति और चैन के वातावरण मे किसी भावभीने गीत ने लहरें पैदा कीं। दूर के घरवाले भी कान खोलकर उसे सुन रहे थे। वह भाषा किसी की समझ मे नही आयी। पर उस गीत की प्राणशक्ति ने आत्मा को छू लिया था। गीत की लय ने मनुष्य की सुप्त उत्कंठाओं को जगा दिया था। आज नही, तो कल सभी को वह गीत गाना होगा।

वह कोई मधुर प्रेम-गीत नही था, खिलते हुए गुलाब से पूछे जानेवाले छोटे सवाल नही। थके-हारे राही का गीत था वह। लम्बे सफर मे बिताये क्लेशभरे अनुभवों की स्मृतियाँ। नही, अनन्त शून्यता की तस्वीर। क्या सूखे कण्ठ से उसकी जीभ ठीक से काम नही कर रही! उसका गला भर आया। बुद्धि साफ़ नही। सिर्फ हृदय स्पन्दित हो रहा था।

उस गीत का प्रत्येक शब्द सीमातीत भार वहन करता है। उससे दबकर गाना विलुप्त भी हो जाता है। परमाणु ब्रह्माण्ड से पूछता है। निमिष और अनन्तता के बीच का संबन्ध परिभाषित होता है। यह स्थापित हो जाता कि शक्ति और वस्तु भिन्न नही। यह विशाल सकल्प तो उमरखय्याम का देश ही कर सकता है।

बूढा गायक अपने स्रष्टा से ही कुछ सवाल पूछता है। यह लम्बा रास्ता जाकर कहाँ खत्म होता है?

एक कूबड बूढा घर बैठे सहानुभूति से वह गीत सुन रहा था।

'बेचारा, थक गया है। जीवन मे उसने कुछ कमाया नही।'

वह काँपता स्वर धीरे-धीरे बन्द हो गया। आधी रात के करीब रास्ते के चूल्हे की जलती लकडी राख हो गयी। बीच-बीच मे बैल के गले की घण्टी बज उठती थी।

वे सो गये।

वह एक घर है। ऐसा घर, जिसकी समाज उपेक्षा करता है। जीवन पर बाडी बाँधकर सीमाओ मे घेरा घर नही। वह रिश्ता भी कुछ नियमों पर आधारित, कुछ सुदृढ विश्वासो से बँधा हुआ है। बूढा बूढी के लिए है और बूढ़ी बूढे के लिए। वैसे जीवन के क्रमीकरण और स्पष्टता मे वह रिश्ता अपनी भूमिका अदा कर रहा है। लेकिन वह घर आशाओ के टूट जाने पर उदास हो गया

तहसीलदार के पिता[1]

"थैं थै थो थै थैं थो……"

सिंचाई का यह गीत रात के सन्नाटे मे ऊँची आवाज मे सुनाई दे रहा था। कुट्टनाड के खेतों से कातिक-अगहन में यह गीत गूँजा करता है।

बालक की नींद टूट गयी, वह रो उठा। माँ कोसती हुई उठी और फिर से लोरी गाने लगी। मगर बालक और जोर से रोने लगा। लोरी और रोने की आवाज उस बूढ़े के गाने मे डूब गयी।

"थैं थैं थो थै थै थो……"

"जरा कहिए न कि गाना बन्द कर दे।"

भानुमती अम्मा ने पतिदेव से कहा। उसने गुस्से मे बच्चे को एक चपत भी दे मारी।

बूढ़े को इन बातों का कुछ भी पता नहीं।

"जरा चुप रहिए न! रात को लेटे-लेटे क्यों चिल्ला रहे है…" तहसीलदार पद्मनाभन् नायर ने कहा। टूटी नींद, पत्नी का हठ, बच्चे की रुलाई—सब ने मिलकर उन्हें बहुत तंग कर दिया।

"एँ, क्या है बेटा?" वृद्ध ने पूछा।

"आप क्या बच्चे की चिल्लाहट नहीं सुन रहे है?" पद्मनाभन् नायर ने कहा।

"बेटा, मैं खुशी के कारण अनजाने गा उठा था।"

केशवजी सत्तर बरस पार कर चुके। सारे बदन की चमड़ी सूख गयी है, झुर्रियाँ पड़ आयी है। रहँट चलाते, मजदूरों के साथ कीचड़-सने पानी में खड़े-खड़े खेत की मेंड चुनते ऐसा हो गया। उनकी निर्जीव-सी आँखो मे कीचड़ जमी हुई है। कमर कमान हो चली है।

१. तहशीलदारुटे अच्छन।

किसी को उस दृश्य का अर्थ समझ में नहीं आया। एक और बूढ़ा सब कुछ ध्यान में देख रहा था। उसने कहा, "उसका अर्थ मैं समझ गया।"

उस बूढ़े के चारों ओर लोग इकट्ठे हो गये। उसने कहा, "उस बूढ़े ने भरे गले से कहा —ऐसे ही एक दिन रास्ते के किनारे मैं मर जाऊँगा। फिर तेरा साथ कौन देगा?"

एक युवक ने पूछा, "तो बुढिया ने क्या कहा?"

"भगवान ऐसा होने न देंगे। मैं तुम्हारा मुख देखते-देखते आँखें बन्द करूँगी।"

"आप इनकी भाषा जानते हैं?"

"नहीं।"

"फिर कैसे मालूम हो गया?"

"इसके अलावा और कहना ही क्या होगा? कुछ नहीं कहना होगा।"

× × ×

दूसरे दिन सुबह पति-पत्नी मिलकर गाड़ी के आगे लगकर उसे खींच ले जाने लगे—अपने लम्बे सफर की राह पर।

"अरे नाणु, मुन्नी को नहला दे! इसके कपड़े से बदबू आ रही है।" इसके बाद बच्ची की रुलाई सुनाई दी।

"आगे कभी रोयेगी?" कहते हुए माँ बच्ची को सजा दे रही थी।

केशवजी ने पूछा, "क्या यही कहना चाह रही थी कि आगे भी मेरे पास आएगी?"

"उसकी पूरी फ्राक पर थूक लग गया है।"

"क्या मेरे गोद में उठा लेने भर से मुन्नी गँधा गई? वह...वह मेरी पोती है री!"

"इन बच्चों को गाली क्यों दे रहे थे?"

"हूँ"— बूढ़े ने सिर्फ 'हूँ' भर किया।

दूसरे दिन। उस दिन भी तहसीलदार घर पर नहीं थे। केशवजी तहसीलदार के सोने के कमरे में खड़े थे। मखमली तोशक बिछा था। उसकी चमकदमक देखकर बूढ़े ने उसे छूकर देखा। बहूरानी दरवाजे पर आयी। उसने पूछा, "क्या कर रहे हैं?"

केशवजी ने मुड़कर उसकी तरफ एक दृष्टि डाली।

"मैं? लो, देख लो!" कहते हुए वे उस पलंग पर लेट गये।

उस दिन शाम को तहसीलदार लौटे तो देखा, श्रीमती गाल फुलायें बैठी हैं।

"हूँ? यह कुढ़न?" पत्नी की ठुड्डी हाथ में लिये हँसते हुए पति ने प्रश्न किया।

वह कुछ नहीं बोली।

"लो, मैं भी नाराज हूँ—" वे भीतर चले गये और कपड़े बदलने लगे। नाणु ही कॉफी लाया।

"भानू!!" उन्होंने आवाज दी।

भानुमती आयी।

"हूँ...क्या?"

"ये बच्चे यहाँ रहेंगे तो बिगड़ जायेंगे। ये आपस में गाली देना सीख गये हैं।"

"मतलब?"

उस दिन पत्नी ने पति को बहुत कुछ बताया।

"मैंने वे सारे सम्बोधन सुने हैं, भानू!" पद्मनाभन् नायर ने कहा, "उस गँधाते मुँह से मझे हजार चुम्बन मिले हैं। यह थूक भी लगा है।"

"मैं बच्चों के साथ अलग रह लूँगी।"

पद्मनाभन् नायर पिता के पास गये। उनसे पूछा, "इन बच्चों को गाली के शब्दों में क्यों पुकारते हैं? इनके अपने नाम हैं न?"

वह जीवन-गाथा संक्षिप्त है। शुरू में ग्वाले का छोकरा, फिर जुताई का मजदूर, पांच बीघा खेत में खेती करता किसान, सौ बीघे की खेती और आखिर तहसीलदार के पिता।

उस बड़े बंगले के पिछवाड़े का छोटा सायबान ही केशवजी का कमरा है। वृद्ध के आगमन से पहले वह कमरा नौकरों को दे रखा था। उसमे एक चारपाई पर गद्दा बिछा है। उससे जहाँ-तहाँ रुई बाहर झाँक रही है। पास एक खरल है, पान की पोटली भी।

क्या उसका यह जीवन सफल रहा? क्या उसे साठ सालों के शारीरिक कष्टों का फल हासिल हुआ? क्या वह अपढ़ बुड्‌ढा शिक्षा की कीमत पहचानता है?

उस गद्दे के सिरहाने सोने की मोहरो से भरी थैली नही है। उनके नाम पर खेत या बगीचे का पट्टा नही है। मगर वे खुश हैं कि उन्होंने अपना फर्ज अदा कर दिया। इसीलिए वे स्वयं को भी भूलकर गा रहे हैं—

"थै थै थों थै थै थो······"

बचपन मे सीखा हुआ यह गीत अगहन आने पर, अपनी खास परिस्थिति पर ध्यान दिये बिना ही गा उठे थे। साठ सालो से वह यह गीत गाते आ रहे थे।

उस बड़े बंगले मे केशवजी का बेटा रहता है। बडे-बडे अधिकारी-अमीन व पटवारी सभी पप्पन (केशवजी पुत्र को इसी दुलारे नाम से पुकारते थे) के सामने बडे विनय से पेश आते है। पप्पन शानदार पोशाक मे दफ्तर जाया करता है। इन सब दृश्यों को देखकर बूढ़े की आँखे खुशी से भीग जाती। वे अपने आप से कहते "काश ! यह सब परखने के लिए पप्पन की माँ जिंदा रहती।"

पद्मनाभन नायर की छोटी मुन्नी आँगन पर डगमगाते कदमो से चल रही थी। केशवजी उसे पकड़ने दौड़ पडते हैं।

आखिर वह पकड़ मे आ गई। बूढ़े ने उसे गोद मे उठा लिया। "अरी शैतान!" बूढा उसे बोसे-पर-बोसा देने लगा। बच्ची खिलखिला उठी।

"मुन्नी! 'दादा' पुकारो।"

बच्ची बोली, "दादा!"

बूढा खुशी मे नाच उठा। बच्ची उसकी मूँछो से खेलने लगी।

"शैतान!"

भानुमती अम्मा ने यह सुन लिया। उसने बूढे को बच्ची को चूमते भी देख लिया।

"लाओ, मुन्नी को यहाँ दो।" वह बच्ची को लेकर भीतर चली गयी। केशवजी की मूँछो मे लगी पान की थूक की दो लाल बूँदें बच्ची की फ्राक पर टपक पड़ी थी। भीतर से आयी बातचीत बुजुर्ग के कानो मे पडी।

बूढे की आवाज जोर पकडती ऊँची हो आयी थी। तभी शोरगुल सुनकर नाणु आ गया।

उस दिन रातभर भानुमती अपने पतिदेव को, जाने क्या, बताती रोती रही। पद्मनाभन् नायर कह रहे थे—"वे हमारे देवता है। भानू! हमारे बच्चो की बात सोचो।"

"तो क्या मैंने उन्हे गालियाँ दी हैं जो....? ठीक है, पिता को कोई कभी क्यो छोडेगे? मगर हम दोनो मे नही पटेगी, इसलिए मैं ही चली जाऊँगी।"

एक दिन बडे सवेरे रसोईघर मे कोई आहट सुनकर बहूरानी जग गयी और नाणु को आवाज दी—रसोई घर मे कोई है। वह स्वय दीया लेकर रसोईघर में जा पहुँची। तब तक नाणु भी वहाँ आ गया।

"कौन है?"

कोई जवाब नही। अन्दर केशवजी बैठे थे। एक कटोरी से कुछ पी रहे थे। बहूरानी सन्न रह गयी। नाणु हँस पडा।

"भूख के मारे रहा नही गया। क्या तुमने मुझे रात को भोजन दिया था? कुछ पी लेने को मन हो आया", कटोरी नीचे रखते हुए केशवजी बोले।

भानुमती शरम व गुस्से से पागल-सी हो गयी, "अरे, नाणु! वे सारे बर्तन बाहर फेंक दे।"

केशव ने हँसते हुए पूछा, "किस पर झल्ला रही हो? तुम रात को खाना दे देती तो तब भी क्या मैं खुद उठाकर नही खा सकता था?"

बहूरानी चली गयी। यह झगडा आगे बढाने लायक नही है। पत्नी ने पति से कहा, "यह मेरे लिए शरम की बात है। आप उन्हे जरा समझाइए।"

"तुम शायद उन्हें ढंग से कुछ नही देती हो।"

"अपराध हमेशा मेरा ही होता है। आप बाप-बेटे ठहरे। बढिया सब्जी के साथ भरपेट खा लिया था।"

"माफ कर दो भानू!"

"यह बेइज्जती और गालियाँ बरदाश्त करते हुए मैं यहाँ नही रह सकती।"

पद्मनाभन् नायर चुपचाप बड़ी देर तक लेटे रहे। बहूरानी अविराम सुनाती रही। कुछ समय बाद वे उठे और लालटेन उठाकर सायबान की तरफ चल दिये।

केशवजी खरल मे पान-सुपारी कूट रहे थे। उन्होंने सिर उठाकर देखा। "कौन?"

"मैं हूँ।" पद्मनाभन् नायर की आवाज कठोर थी।

वृद्ध ने कहा, "मेरे बेटे, अंतड़ियाँ जल-सी उठी थी। बुढ़ापा है न! मैंने रसोईघर जाकर थोडा-सा ठण्डा बनाकर पी लिया। ओह! लग रहा था कि

वृद्धा बोला, "मुझे वे नाम ठीक से पुकारना नही आता, लल्लू !"

"आप उनकी बातों मे क्यो दखल देते है ? स्नान-ध्यान और पूजापाठ क्यो नही करने लगते ?"

केशवजी का चेहरा सूख गया। "हाय बेटा ! बच्चो को देखने पर उन्हें पुकारे बिना, उन्हे गोदी मे बिठाये बिना कैसे रहूँ ?"

पद्मनाभन् नायर क्षण भर स्तब्ध रहे। उन थकी आँखो मे आँसू भर आये। वह चेहरा एकदम बुझ गया। तहसीलदार के मन मे क्षणभर के लिए कुछ स्मृतियाँ उभर आयी। आधी रात को जगाकर, पास बिठाकर खुद चावल के कौर खिलाना, रोते वक़्त अगोर लेकर चूमना, जरूरत पर पैसे माँगते ही कॉलेज मे पहुँचा देना...

पद्मनाभन् नायर सिर झुकाये चले गये। वृद्ध पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा रह गया।

केशवजी कभी-कभी कमर पर सिर्फ़ कच्छा पहनकर और सिर पर लुँगी की पगड़ी बाँधे बाहर घूमा करते थे। घूमते हुए जब कभी कचहरी पहुँच जाते थे। यहाँ वे गुमाश्तो से पूछते, "पप्पन यहाँ है ?"

शुरू-शुरू मे बात उनकी समझ मे नही आती थी।

"कौन-सा पप्पन, दादाजी ?"

"तासीलदार। हमारा बेटवा। तासीलदार हमारा बेटा है।"

भानुमती अम्मा जिला कमिश्नर की बेटी है—इस पर भी वे गर्व करते।

एक दिन स्थानीय मैजिस्ट्रेट की पत्नी, सहायक कमिश्नर की पत्नी आदि कुछ स्त्रियाँ उस घर पर आयी। वे बड़ी मस्त होकर बातें कर रही थी कि केशवजी कमरे मे आ गये और पूछने लगे, "अरी बहू ! पप्पन कब तक आयेगा री ?"

बहूरानी की इससे अधिक और क्या बेइज्जती हो सकती थी ! जब सभी मेहमान विदा हुए तब बहूरानी केशवजी से खुले महाभारत के लिए तैयार हो गयी। "हाँ, कहे देती हूँ—मुझे अरी-वरी मत पुकारा करें। किसी ने मुझे ऐसे नही पुकारा है।" उसने गम्भीरता से कहा।

वृद्ध को क्रोध आ गया।

"तो मैं 'सरकार'···घत् ! जा री जा !"

"यह दाल यहाँ नही गलने की। मुझे फटकारने की इच्छा हो तो मुँह धो रखिए।"

"तो फिर पुकारने फटकारने का हक किसे है री ? मेरा खाना खाते हुए··· अपने लल्लू का ख्याल करके चुप रहता हूँ। तेरी जीभ खीच लूँगा। तू केशव को नही पहचानती—"

तकलीफ नही होगी।"

"जो भी हो, यह बहुत अपमान की बात है।"

"मेरे ··· मेरे लल्लू को क्या ऐसा लगता है?"

तहसीलदार को सन्देह हुआ कि उस बूढ़े दिल में बड़ा दर्द हो रहा है। थोड़ी देर बाद उन्होंने पूछा, "गाँव में बुआ रहती है न?"

"हाँ"। बूढ़े ने सिर हिलाया।

"क्या वहाँ जाकर नही रह सकते?"

"नही बेटा, नही।"

"जरूरत के अनुसार पैसे मैं पहुँचा दिया करूँगा।"

"पैसे? मुझे? मैं चावल व पैसा बहुत देख चुका हूँ। मुझे पैसे की ज़रूरत नही है। लाल, न मैं पैसा चाहता हूँ, न वहाँ जाकर रहूँगा।"

वृद्ध चला गया।

जीवन में इतने सारे कष्ट इसके लिए नही उठाये थे। उस बूढ़े को न धन की चाह थी न टीमटाम की। पद्मनाभन् नायर को याद है। वे जवानी में कहा करते थे, "जब मेरा बेटा नौकरी पाकर खुशहाल रहने लगेगा तब उसके साथ चार दिन रहना है।"

टेढ़ा सवाल है जिसका कोई जवाब नही। उन दोनों में कभी नही पटती। जीवन का ध्येय! छोटी उम्र से ही बड़े अरमान थे। उसके चारों ओर परिश्रमी जीवन तूफान की तरफ मँडराता था। होश आने के बाद की सारी बातें एक-एक कर तहसीलदार को याद आने लगी। उन चार दिनों के लिए सत्तर वर्ष बिताना। आखिर उन चार दिनों से वंचित रह जाना—कितनी भीषण बात है! काश! उस वृद्ध की स्मरण-शक्ति नष्ट हो जाती। ऐसा होता तो चार दिनों की बात न उठती। यह भी गनीमत थी। निराशा न होती। मगर साथ रखे तो कैसे?····वृद्ध की जिद्दी प्रकृति हद से बाहर हो गयी है।

तहसीलदार दौरे पर थे। एक दिन भानुमती नहाने नदी पर गयी। साबुन लगाते हुए उँगली से अँगूठी फिसली और पानी में खो गयी। बड़ी कोशिश करने पर भी नही मिली। नहाकर लौटी। केशवजी को पोते से इसकी खबर मिल गयी थी। उनसे रहा नही गया। बुजुर्ग उस नुकसान के सामने अपने को भी भूल गया। भानुमती कपड़े बदल रही थी कि वे कमरे में घुस आये।

"अरी, तुम्हारे हाथ की अँगूठी कहाँ?"

भानुमती ने उस सवाल को अनसुना कर दिया।

"कहाँ है वह अँगूठी?" केशवजी गरजे।

"क्यों?" भानुमती ने हिकारत से पूछा।

"क्यों क्या? मेरे बेटे को कंगाल बना देने का व्रत लिया है? तुम्हारी

अन्तिम समय आ गया।"

"तो नाणु को बुला लेते ?"

"ओह पप्पा ! उसे क्यो कष्ट दूं ? जब से परोसनेवाली चली गयी तब से मैं हमेशा खुद ही परोस लेता, खा लेता हूँ। क्या तुम भी भूल गये ?"

डाँटने के लिए गये पद्मनाभन् नायर कुछ कह न सके। बचपन की याद आने से उनका गला रूँध गया। उन सूखे हाथो ने कितनी बार उन्हे खाना खिलाया है! उन्हे स्मरण है, केशवजी एक बूढी स्त्री से कह रहे थे, 'अगर घर बसाने के लिए दूसरी औरत को ले आऊँ तो वह मेरे बच्चे को ढँग से कुछ नही खिलाएगी। मैं अपने बच्चे का खाना खुद पकाऊँगा, खिलाऊँगा।'

पद्मनाभन् नायर चुपचाप लौट आये। उनकी आँखे भर आयी थी। कुछ कदम आगे बढने के बाद मुडकर देखा। बूढा सिकुडकर गठरी-सा बैठा हुआ था।

केशवजी ने तब भी बेटे को नही बताया कि बहू ने रात को खाना नही दिया था। भानुमती छिपकर खड़ी-खडी ये सब देख सुन रही थी। उसने पूछा, "साहब को देखकर कवायद भूल गये ?"

पद्मनाभन् नायर ने कुछ नही कहा।

"भानु, उस साहब को देखकर बहुत-सी बातें याद आ जाती हैं। याद करने के लिए भी बहुत कुछ है। मेरी माँ···"

पद्मनाभन् जब पाँच के ही रहे होगे, माँ चल बसी थी···उस स्नेहमयी नारी की धुँधली मुखाकृति दीख पड़ी—मानो सपने मे देख रहे हो।

× × ×

परन्तु इस घटना ने एक जटिल समस्या का रूप धारण कर लिया। किसी पर अभियोग नही लगाया जा सकता था। दोनो के पास दलीलें थी। पद्मनाभन् नायर सकट से बचने का उपाय देर तक सोचते रहे।

वृद्ध को कुछ शराब चढाने की आदत है। साँझ होते ही वे ताडीखाने की तरफ चल देते हैं। यह खबर गाँव-भर मे फैल चुकी थी। गमछा पहनकर उजड्ड देहाती की तरह चल पड़ते है। और फिर वापस आकर घर पर हंगामा मचाते हैं।

एक दिन पद्मनाभन् नायर ने केशवजी से कहा, "ये सब मेरे लिए अपमान की बातें हैं।"

"आगे चलकर हालत इससे भी खराब होने वाली है, बेटा।" केशवजी की आँखें गीली हो रही थी। आगे बोले, "मेरे लल्लू, तुम्हारा बाप किसी का गुलाम नही रहा है। अपनी इच्छानुसार मैं इतने साल जी चुका। लाल, तुम अपने इस बाप से कुछ मत पूछो···तुम न कुछ सुनना, न ख्याल करना···तुम्हारे मन को

काफी है।"

पुत्र पर वृद्ध का दबाव तो था मगर वह गजवर अपनी शक्ति को नहीं पहचानता था।

× × ×

दो-तीन दिन बीत गये। केशवजी सायबान से बाहर नहीं निकलते। उसमें सिकुड़े बैठे थे। देखने पर पागल से लगते थे।

नाणु ने पूछा, "बाबा, यहाँ से जाने पर क्या आप वापस नहीं आयेंगे?"

बुजुर्ग ने कुछ नहीं कहा।

"मालिक ने मुझसे कहा है कि मैं परसों आपको गाँव पहुँचा आऊँ।"

वृद्ध मानो कुछ चौंक-सा उठा। उसने पिछले सत्तर वर्षों की तरफ़ घूर कर देखा। आगे के दिन··· उनमें वे चार दिन···

चाँदनी में नहायी रात। पद्मनाभन् नायर को नींद नहीं आ रही थी। बीच-बीच में वे जाग पड़ते। आधी नींद में किसी को कहते सुना—"बेटा एक बार 'पिताजी' पुकारो।" फिर झपकी खुली तो 'बेटा' पुकार सुनी। वह तीन बार दोहराई गई। उन्हें कुछ शंका हुई।

दूसरे दिन वे पिता की कुछ मीठी बातों को याद करते हुए जाग पड़े। बी०ए० पास करने के बाद उन्होंने आज तक उस वृद्ध को 'पिताजी' नहीं पुकारा था। वह जिंदगी कुर्बानियों की थी। बुढ़ापा चढ़ने के पहले उस चेहरे पर हमेशा मुस्कराहट रहा करती थी। लेकिन अब?····क्या यह मायूसी बुढ़ापे की खासियत होती है? तब तो बड़ी भीषण बात होगी।

तहसीलदार ने नाणु को बुलाया और कहा, "उन्हें···पि··उन्हें बुला लाओ।"

नाणु सायबान की तरफ़ यों चल पड़ा मानो न्यायाधीश के आदेश पर अप-राधी को पकड़ने जा रहा हो। वहाँ वृद्ध नहीं मिला। वृद्ध के कपड़े और पान की पोटली भी गायब। भानुमती ने कहा कि कहीं बाहर गये होंगे। उस दिन दोपहर भी वे नहीं मिले, न दूसरे दिन ही। पद्मनाभन् नायर घबराये। गाँव को आदमी भेजा। वहाँ भी नहीं पहुँचे थे।

भानुमती ने कहा, "चुप रहिए। सिर्फ़ इतना कहिए कि गाँव गये है।"

"ओह! चण्डालिन—" पद्मनाभन् नायर कुरसी पर धड़ाम से गिर पड़े।

"अरी राक्षसिन! मेरे पिताजी कहाँ···?"

खर्चीली आदतें देखता ही रहता हूँ।"

"इन बातों का जवाब उन्हें दूंगी जिन्हे पूछने का हक है।"

यह तो वृद्ध के लिए बहुत हो गया। उसका खून खौल उठा, आँखें लाल हो आयी। वे मुट्ठी कसकर आगे बढे, "हट जाओ, शराफ़त कहीं छूट जाये···"

दोनों अपनी अपनी हैसियत भूलकर ज़ोर-ज़ोर से बोल रहे थे। पडोसी जमा हो गये। वृद्ध ने कहा, "मुझे तुम्हारे रंग-ढंग का पूरा पता है। मेरे बेटे को···कुलच्छनी! वह बदमाश नाणु किधर है?"

दूसरे दिन पद्मनाभन् नायर लौटे। भानुमती न बिस्तर से उठी, न खाया न पिया। पद्मनाभन् नायर ने सारी बातें सुनी। नाणु ने मिर्चमसाला लगाकर सारी बात बतायी। वे तैश मे आ गये। वृद्ध उनके सामने सिकुडे हुए पहुँचे।

"सठिया जाने पर भी··· सूझ-बूझ तो···"

पद्मनाभन् नायर दाँत पीस रहे थे। वृद्ध ने एक भी शब्द नही कहा। उन आँखों से आँसू बूँद-बूँद कर टपकने लग गये।

पद्मनाभन् का कथन जारी था—"जैसे शराब के नशे मे धुत होकर मेरी माँ को समाप्त कर दिया···"

केशवजी कुछ कहने आगे रुके नही। सिर्फ इतना ही कहा, "बेटा···"

उस बूढ़े के पास कहने के लिए तो बहुत कुछ था। उसके उदास दिल ने कई भेद छिपा रखे थे। ठीक खाना न मिलना, नाणु द्वारा उपहास आदि अनेक बातें आज सब कुछ दिल खोलकर सुनाने के इरादे से बेटे के सामने आया था। मगर मुँह नही खुला।

उस जीभ में मिठास नही थी। दूसरे के दिल को अपने वश मे करने की ताकत उसमे नही है। दलील पेश करने की हिम्मत नही है। जीवन के अन्तिम दिनो के अनुभवो ने जो घाव बना दिये थे उन्हे किसी ने नही देखा था।

तहसीलदार के सोने के कमरे में उस दिन रात भर बातचीत होती रही।

"उस शैतान ने कहा कि मैं चोरी छिपे दूसरे से इश्क करती हूँ।" भानुमती के ये शब्द सुनकर पद्मनाभन् नायर आग-बबूला हो गये।

"यों कहा?···तब तो मैं उसे इसी क्षण रवाना किये देता हूँ। बेशरम बुड्ढा···"

"शान्त रहिए" भानुमती ने कहा, "चार दिन बाद देखा जायेगा···"

केशवजी पुत्र को अपनी कोई इच्छा नही बताते थे। दबंग प्रवृति का वह किसान बेटे के सामने कठपुतली-सा हो जाता था। उस दिन रात को केशवजी ने नाणु से कहा, "अपने पप्पन के सामने मैं दुम हिलाता कुत्ता हो जाता हूँ। अपने भूखे रहने की बात बेटे को इस डर से नही बताता कि उसके मन मे कष्ट होगा। मेरा बेटा अपने बाप को इतना प्यार करता है। मैंने प्रभु से यही प्रार्थना की थी। चार दिन उनके साथ बिताना··· ओह! ऐसा ही रहना

थे। नाणी और गोविंद रसोई का खेल रच रहे थे। नीलकण्ठ और राम गुठली दादा की अंत्येष्टि का खेल कर रहे थे। सूखी डालियों की बनी पालकी में आम की एक गुठली रख कर आम के पेड़ की परिक्रमा करते हुए वे गा रहे थे—

"गुठली दादा मरि गयो रे हाय ! हाय !
हो गयो रे सोरहो[1] का असनान,
सोरहो पूरने को आम दे···इक आम दे···"

ऊपर एक कौवा काँव-काँव कर गया। बच्चों का खेल रुक गया। अमरूद पर बैठे लड़के धरती पर कूद पड़े।

"वह बच्चू कौवा है।"

"नहीं, माँ कौवा है।"

"चुप रह, कौवा उड़ जाएगा।"

सब ऊपर की ओर देखते खड़े रहे।

खिसियायी-सी वह लड़की कुछ दूर हटकर खड़ी हुई थी। उसका नाम था पाप्पी। उसके चेहरे की रुखाई अब भी दूर नहीं हुई थी।

एक आम गिरा। वह बालो को मिला। आम की ढेंरी नोच उसे ऊपर फेंकता हुआ वह गा उठा—

"यह ढेंपी लेकर
बदल-ढेंपी आम[2]
पाप्पी को दे दे ! ··"

साधारणतया बच्चे 'मुझे दे दे' कहते हैं। उसे बदलकर बालो ने अपनी शरारत का प्रायश्चित किया। बदल—ढेंपी आम पाप्पी को मिल भी गया।

साँझ धुँधला आने पर बच्चे आम के पेड़ तले से चले गये। बालो और पाप्पी भी एक दूसरे के हाथ में हाथ डाले घर चल दिये। बालो के दूसरे हाथ का थैला आमों से भरा हुआ था। लेकिन पाप्पी को उस दिन कोई और आम नहीं मिला था।

बालो और पाप्पी पड़ोसी थे। बालो के घर के ठीक पिछवाड़े में था पाप्पी का घर।

अगली विजया दशमी से दोनों लिखने-पढ़ने जाने लगे। दोनों साथ-साथ

---

१. मृत्यु के सोलहवें दिन किया जाने वाला कर्म।
२ वह आम जो ऊपर फेंकी गयी ढेंपी के बदले मिलता है। बच्चों का विश्वास है कि ढेंपी ऊपर फेंकने पर अगला आम जल्दी मिल जाएगा।

आम के पेड़ तले

"नहिं कोई पवनवा है पवनवा !
नहिं चण्ड पवनवा भी पवनवा !
मावेली टीले के पवनवा रे आ…आ…,
समंदरवा रे आ…आ…आ…
झटकाके अमवा रे गिरा दे इक…"

एक झोंका आया। कलमी आम की गगनचुम्बी डालों में आम के गुच्छे झूल उठे।

उनकी उमंग बढ़ गयी। वे एक साथ गा उठे—

'पवनवा रे आ…समदरवा रे आ…'

हवा और तेज चलने लगी। पत्तियों से भिड़-भटकर जाने कोई चीज नीचे गिरी। गीत एकाएक रुक गया। आम के तले क्षण भर के लिए कोलाहल मच गया। नीचे गिरी चीज एक छोटी लड़की ने उठा ली। और एक भारी ठहाका ! वह ओतलम का फल था, एक विषैला फल। लड़की खिसिया गयी। उसने उसे दूर फेंक दिया। सिर झटका कर हँसता हुआ एक छोकरा प्रकट हुआ। सब ठठाकर हँस पड़े। बेचारी लड़की रो उठी।

उस शरारती लड़के का नाम था बालकृष्ण। उसने थोड़ी दूर खड़े अमरूद के एक पेड़ पर चढ़कर उसकी डाल से लटकाये गये नारियल-पत्ते के थैले से एक आम लेकर उस लड़की के आगे फेंक दिया।

एक क्षण वह हिचकती खड़ी रही। फिर जैसे ही वह झुकी, तब तक एक दूसरे ही लड़के ने उस आम को उठा लिया। और फिर एक जोरदार ठहाका।

गौरी और नारायण कंकड़-पत्थर चुनकर जूस-ताक खेल रहे

पाप्पी को घर में जाने कितने काम करने पड़ते थे। चूल्हा जलाना गोबर हटाकर गोठ साफ करना, बर्तन मलना और भी जाने क्या-क्या···उसे खेलने-कूदने को वक्त ही नहीं मिलता था।

प्राइमरी स्कूल की पढ़ाई पूरी करने के बाद बालो का चार मील दूर के एक अँगरेज़ी स्कूल में दाखिला हो गया। उसे कुर्ता-धोती पहने अपने बाप के साथ अपलप्पुपा को जाते, पाप्पी पत्थर की-बुत-सी खड़ी देखती रहती।

"बालो, तू अब कब आएगा?" उसने पूछा।

"शुक्रवार को आऊँगा।"

पाप्पी बिसुर गयी। वह अपलप्पुपा में रहने जा रहा है! उस छोटी-सी लड़की का दिल बैठ गया। अगले शुक्रवार की शाम बालो लौट आया। पाप्पी ने उसे झोली-भर आम दिये।

उस साल दक्खिन-पछाँही बरसात भीषण थी। भारी वर्षा हुई। बड़ी बाढ़ आयी। डेढ़ महीने तक बालो नहीं आया। हर शुक्रवार पाप्पी बालो का इन्तज़ार करती रही, मगर वह नहीं आया।

पानी उतर जाने पर बालो घर लौटा। उसके साथ एक दूसरा लड़का भी था। शनिवार को भी बालो की पाप्पी से भेंट नहीं हुई। पाप्पी को तो उसके घर जाने का मौका ही नहीं मिला। इतवार को वह बालो के यहाँ गयी। बालो और उसका साथी अँग्रेज़ी पढ़ रहे थे।

मिडिल स्कूल की चार साल की पढ़ाई पूरी कर बालो हाईस्कूल में भर्ती हो गया। अगले ओणम की छुट्टियों में वह घर आया। पाप्पी ने देखा—कुली से एक बक्स उठवाये कोई बना-ठना युवक पुरबी घर की ओर आ रहा है। चुटकी भर जीरा उधार माँगने के बहाने वह वहाँ जा पहुँची। वह बालो था। क्षण-भर के लिए पाप्पी उसे पहचान न पायी।

बालो ने चोटी कटवाकर बाल बनवा लिये थे। चेहरे पर दो-तीन मुँहासे उग आये थे। आवाज़ बदल गयी थी। पैरों में जूते थे और हाथ में छाता। बक्स में तरह-तरह का सामान। बालो की मुस्कान भी खास किस्म की थी।

"माँ, भूख लगी है।" कहता हुआ बालो रसोई में पहुँचा। पाप्पी वहाँ खड़ी थी। वह घुटनों तक लटकने वाली छोटी धोती पहने थी।

"क्या हाल है, पाप्पी?" बालो ने पूछा। वह चुप रही।

छुट्टियाँ बीत गयीं। बालो के अपलप्पु लौट जाने का वक्त हो गया। बक्स उठवाये वह रवाना हुआ। कलमी आम तले से जाते उसे लगा कि कोई पुकार रहा है। वह रुक गया। गन्धर्व मन्दिर के सामने पाप्पी खड़ी थी। उसने पूछा—

"बालो, तुम जा रहे हो?"

"हाँ।"

किट्टू आशान्[1] की कुटी-पल्ली[2] जाते और साथ-साथ घर लौटते। लिखने के ताड़पत्र पर मलने के लिए वे एक-दूसरे को भंवरैया देते। बालो मन्दिर के तालाब पर जाता और कमल तोड़कर पाप्पी को दिया करता।

पाप्पी पढ़ने में होशियार नहीं थी। उसकी अक्सर पिटाई होती रहती। वह कुछ नहीं जानती, ना ही कुछ समझ पाती। मगर एक बात में वह बालो को हरा देती :

"उस पार खड़ी तुंचाणी,[3]
इस पार खड़ी तुंचाणी,
टकरा लेती तुंचाणी—बोल, बालो, बोल!"

बालो वह पहेली बुझा नहीं पाता। वह कहता, "नारियल।"

"नहीं, नहीं। एक कटम।"[4] वह जीतकर तालियाँ बजा-बजा हंसने लगती।

"तो तू ही बता दे!"

"पलकें। अब हो गये कुल चार कटम।"

वे परस्पर मारते-पीटते। बालो पाप्पी को छीलता-खरोंचता। पाप्पी रोती हुई अंगूठा दिखाती—

"अब मैं तुझसे नहीं बोलूंगी।"

पाप्पी कुलीन परिवार की थी। वह कहती, "तुम्हारे यहाँ हम नहीं खाते!"

बालो भी एक बात पर गर्व कर सकता था, "मैं अंग्रेजी सीखूंगा।"

छह महीने की पढ़ाई के बाद पाप्पी की पढ़ाई बन्द हो गयी। उसके मामा ने बताया, "वह अब नहीं पढ़ेगी। औरत जात ज्यादा पढ़ेगी तो जवाब-तलबी करने लग जाएगी।"

बालो अगले महीने एक प्राइमरी स्कूल में भर्ती हो गया। सिलेट और किताबें लिये, छोटी धोती बांधे वह स्कूल जाया करता। पाप्पी देखती खड़ी रहती। एक दिन उसने पूछा :

"बालो, मास्टर पीटता भी है?"

"न पढ़ता तो पीटते।"

आम फलने पर पाप्पी बालो के लिए आम चुन-चुनकर रख लेती और शाम को जब वह आता तो उसे दे देती।

---

१. गुरु।

२. वह पाठशाला जहाँ बच्चे धूल में लिखकर वर्णमाला सीख लेते हैं।

३. नारियल के पत्ते का अग्रभाग—

४. पहेली न बुझा पाने पर होने वाला जुर्माना।

बालो ने उसे एक बार गौर से देखा। पाप्पी उस दिन पहली बार बालो के सामने ज़रा चौंक-सी गयी। हवा चल रही थी, मानो गन्धर्व मन्दिर की साँस हो। सर्पवनी मे मर्मर फूटा। पाप्पी का सिर झुक चला। नारी के चेहरे को आकर्षक बनानेवाली लज्जा की एक झलक—एक आसमान मुस्कान—उसके चेहरे पर खिल उठी। बालो दो कदम आगे बढ गया। पाप्पी की बाँहें छाती पर गुणन का चिह्न बनाये हुए थी। अठारह साल की हो गयी थी वह।

बालो ने धीरे से उसका हाथ पकड़कर थोड़ा दबा दिया। पाप्पी ने सिर उठाया। आँखें चार हो गयी। दूसरे क्षण बालो की पकड़ ढीली हो गयी। पाप्पी भाग गयी।

अगले दिन से वह आम के तले नही आयी। उसने माँ पर ज़ोर डाला कि उसे एक रौका[1] सिलवा दे। बालो को देखते ही पाप्पी भाग खड़ी होती।

बालो मैट्रिक पास हो गया। वह तिरुवनन्तपुरम पहुँच कर इण्टर मे भर्ती हो गया। उसकी दुनिया और भी बड़ी हो गयी। सुसभ्य मित्रो और नागर-नारियो से रमणीय बने उस जीवन मे अतीत की स्मृतियाँ दफना दी गयी। उस साल गर्मी की छुट्टियो मे उसने मद्रास के कुछ मित्रो के साथ सारे दक्षिण की सैर की। अगले ओणम को जब वह घर आया तो चार-पाँच मित्र भी उसके साथ थे। खुले खेत मे टहलने के लिए बालो जब मित्रो को साथ लेकर निकला तो उसने देखा कि चित्तीदार रौका पहने पाप्पी कलमी आम के तले खड़ी है।

चार साल बाद बालो बी० ए० की परीक्षा पास हो गया। तिरुवनन्तपुरम के एक अवकाश प्राप्त उच्च पदाधिकारी की बेटी से उसकी शादी हो गयी। लौटे बरातियों ने बहू के सौन्दर्य की खूब प्रशंसा की।

एक दिन बालो पत्नी के साथ घर आया। पत्नी को घर पर छोड़कर वह विलायत जानेवाला था।

× × ×

वह नागरिक स्त्री शाम को कलमी आम के तले हवा खाने आती। कुंकुम की आभावाले पश्चिमी आसमान के भी पार के देश में गये हुए थे उसके पति। जाते वक्त उन्होने तरह-तरह की कसमे खाई थी, फिर भी उसका अन्तर्मन हमेशा बेचैन रहता था। मेमो की मुस्कान बड़ी ही आकर्षक होती है और यही उनको लाड़ली बनाती है—ऐसा वे कहा करते थे। लन्दन के आनन्दमय जीवन के बीच तिरुवनन्तपुरम की एक नासमझ औरत के सामने खायी गयी कसमें क्या बिसर न जाएँगी? पढ़ी-लिखी नही, रसीली नही, पति को एक बार भी आर्कषित नही कर सकी। उसने सब कुछ भगवान् पर छोड दिया। वे ही सबके आश्रय हैं, वे उसका मामूलीपन दूर करें।

---

1. स्त्रियो का एक छोटा पहनावा जो छाती पर पहना जाता है।

वह बढ़ता चला गया। बालो के भीतर कोई कोमल भाव फुदक उठा। जाने क्या था? उस पुकार में अवर्णनीय कुछ निहित था। अनाहत जैसा।

अगली गर्मी की छुट्टियों में बालो फिर घर आया। दो-तीन दिन ही वह घर पर रहा। फिर वह बहिन से मिलने के लिए उत्तरी परावूर चला गया।

× × ×

बालो हाईस्कूल की अन्तिम से पहले की कक्षा में पढ़ रहा था। इस बार जब वह गर्मी की छुट्टियों में घर आया, वह सत्रह साल का हो गया था।

उस साल आम की जितनी अधिक पैदावार हुई उतनी हाल में कभी नहीं हुई थी। शहर से लौटा बालो बनियान पहने शाम को बूढ़े कलमी आम के तले टहलने जाने लगा। वहाँ वह पुराना गीत बच्चे आज भी गा रहे थे—

पवनवा रे आ! "समदरवा रे आ!"...

गुठली दादा के नये उत्तराधिकारी हो गये थे। उन बच्चों के साथ आज भी आम गिरने पर पाप्पी होड़ लगाती। आम के तले से कुछ दूर बालो वह सुखद दृश्य देखता खड़ा रहता। पाप्पी आज भी एक बच्ची है! आम मिलता तो वह ढेंपी नोचकर ऊपर को फेंककर गाने लगती—

"ले ले यह ढेंपी तू,
दे दे बदल-ढेंपी मुझको।"

एक दिन साँझ को बालो कलमी आम के तले टहल रहा था। सभी बच्चे जा चुके थे। तभी एक झोंका आया। जाने कहाँ से पाप्पी भी वहाँ प्रकट हो गयी। तभी एक आम गिरा। वह उसने उठा लिया।

"पाप्पी, वह आम मुझे दोगी? देखूँ तो!"

पाप्पी ने आम दे दिया।

"पाप्पी को बहुत सारे आम मिल जाते होंगे?"

"मैं वह सब पुरबी घर में दे आती हूँ।"

"हाँ, आज मैंने आम की खिचड़ी खायी। वह पाप्पी के आम से बनी थी!"

"जिस दिन तुम आये उस दिन मैंने डेढ़ सौ दिये थे। माँ ने बताया था कि बालो दस तारीख को आएगा।"

पाप्पी बालो को देखती खड़ी रही।

वे छुट्टियाँ भी बीत गयीं। हाईस्कूल की अन्तिम कक्षा का छात्र था बालो। वह छात्रवृत्ति पाने के इरादे से पढ़ रहा था। इस बार ओणम और बड़े दिन की छुट्टियों में वह घर नहीं आया। मैट्रिक का इम्तहान देने के बाद ही वह घर आ सका।

कलमी आम के तले साँझ को वे पहले जैसे फिर मिले। पाप्पी ने नहाकर अपने बाल खोल जूड़ी बाँध रखी थी। वह सफेद किनारीदार धोती पहने थी।

पूछते हुए वह आम के पेड की ओर चल रहे थे।

उस पुराने कलमी आम के पेड़ ने एक फल देकर उसका स्वागत किया। उनके ठीक सामने गिरा था एक आम।

उसे उठाने के लिए कुछ बच्चे उस पर झपटने ही वाले थे, मगर तब तक जज महोदय ने उसे उठा लिया था। आम हाथ में लिये उन्होंने ऊपर देखा। हवा के झोंके में आम के गुच्छे झूल रहे थे।

"वालो!"

यन्त्रों के भोंपुओं की आवाजों से मुखरित लन्दन, प्रेममयी पत्नी की मीठी हँसी से उल्लसित घर, गरिमामय न्यायपीठ—घटनाओं से भरे जीवन के बीच से आनन्दपूर्ण बचपन का सदेश जज के कानों मे लहरा उठा। उन्होंने मुड़कर देखा।

झुर्रियों से भरे चमडे में लिपटे ककाल-सी एक आकृति उनको देख मन जुड़ा-कर हँस रही थी। पोपले मुँह मे एक भी दाँत नही। जज ने ध्यान से देखा।

बच्चे गा रहे थे—

'नहिं कोई पवनवा है पवनवा!
नहिं चण्ड पवनवा भी पवनवा!
मावेली टीले के पवनवा रे आ···आ···,
समदरवा रे आ···आ···आ···
झटकाके अमवा रे गिरा दे इक···'

उसकी भेजी सारी चिट्ठियाँ आँसुओं से लिखी हुई होती। "मुझसे खायी गयी कसमें भूल न जाइए", वह लिखती। "मेरी आशंकाओं पर कुढ़िए मत। मैं एक नासमझ औरत हूँ। आपको उपदेश देने का अधिकार मुझे नहीं है। मैं हमेशा आपकी तरक्की की मनौतियाँ करती रहती हूँ।" और वह प्रियतम का लाड-प्यार याद करती। उनकी वे भौंहें, उनका वह रूप उसके अन्तर्मन में झलक जाता। वे उसके निजी हैं, पूरे के पूरे।

वह विचारों में डूबी खड़ी थी। उसकी आँखों में आँसू भर आये थे। थोड़ी दूर पाप्पी उसे कुतूहल भरी आँखों से देखती खड़ी थी। उसके गहने, धरती को छूनेवाली धोती—सब वह ध्यान से देख रही थी। वह एक देवी है—पाप्पी को लगा।

पाप्पी ने धीरे से उसके पास जाकर पूछा, "रो क्यों रही हैं?"

तिरुवनन्तपुरम वाली ने पाप्पी पर एक बार उपेक्षाभरी निगाह डाली, बस।

× × ×

चार साल बीत गये। बालो लौट आया। उसकी नियुक्ति उच्च न्यायालय में जज के पद पर हुई।

× × ×

वह गाँव गरिमामय हो उठा। उसे एक महान जज की जन्मभूमि बनने का सौभाग्य मिला। आलप्पुषा से तिरुवल्ला जानेवाली सड़क वहाँ से होकर जाती है। आज वहाँ एक अंग्रेजी मिडिल स्कूल है और हैं कयर[1] के दो कारखाने।

कलमी आम के तले आज भी बच्चे इकट्ठे होते और गाया करते हैं—

"पवनवा रे आ···

समंदरवा रे आ···।"

ना मालूम इसका रचयिता कौन है। दादे-दादियाँ बीच में कभी—घटनाओं से भरी जवानी में— वे पंक्तियाँ भूल गये थे। वे भी आज उन पंक्तियों को याद करते हैं। मगर वे भी नहीं बता पाते कि उन पंक्तियों का कवि कौन है।

गन्धर्व मन्दिर ढहकर मलबा बन गया है। कलमी आम के फल हर्रे के फल के बराबर छोटे हो गये हैं। बच्चे एक ही वक्त एक साथ दो आम मुंह में डाल लेते हैं।

उस दिन शाम को वहाँ की सड़क पर एक कार आकर रुकी। कार से लगभग पचास साल की उम्र के एक सज्जन उतरे। उनके बाल पूरे पक चुके थे। वह बालो था।

जज महोदय के पीछे गाँव के लोग आदरपूर्वक हो लिये। उनसे कुशल-क्षेम

१. नारियल की रस्सी।

भाषा समझ गया होगा, उसने गिनने के बीच उसे देखा। चिड़िया चोंच खोल देती तो मालिक कुछ गुनगुनाने लगता।

पेटी में से हर चीज एक-एक करके उसने बाहर निकाली। दो किताबें भी थी। एक लडके ने एक किताब का नाम पढा 'पक्षी-शास्त्रम्'। पुराने लिफाफों का एक बण्डल भी था। एक लडके ने दूसरे के कान में कहा, "जानते हो, वह क्या है? एक आना दोगे तो वह चिड़िया बाहर आकर एक लिफाफा उठाएगी।"

"हम पैसा दें तो उठा देगी?"

"हाँ, उठा देगी।"

चिड़िया का मालिक बनियान की जेब से बीड़ी-दियासलाई लेकर बीड़ी फूँकने लगा। तब भी चिड़िया कुछ बोली, एक तीसरे ही स्वर मे।

यात्रियो मे से एक ने पूछा, "कहाँ जा रहे हो?"

"कोल्लम्"

"आलप्पुषा मे भी थे?"

"जी हाँ।"

लड़को मे से एक ने अपनी उँगली पिंजडे के सीखचो के अन्दर डाली। चिड़िया ने चोंच मार दी। चिड़ियावाले ने उस लडके को डाँटा।

चिड़िया और उसकी चेष्टाओ को देखनेवाले एक अन्य यात्री ने कहा:

"उसे भूख लगी होगी।"

"नही, उसका समय नही हुआ।"

तब दूसरे यात्री ने पूछा, "इसको क्या खिलाते हो?"

"दूध, केला, मूँग की दाल—सब कुछ देता हूँ।"

उसने पेटी को खोलकर दिखाया। उसमे छोटी बोतल मे दूध था, केला थे और मूँग की दाल भी थी।

उसे रोज क्या मिल जाता है—एक यात्री ने पूछा। वह तो रोज बदलता रहता है। फिर भी एक बात है। इस चिड़िया के आने के बाद उसे पैसे की तगी नही आयी। किसी अनजाने कोने मे चला जाये तो भी एक रुपया तो मिल ही जाता है।

"इसे कहाँ से पाया?" एक यात्री ने पूछा।

"वो बात ••• यह चिड़िया मामूली पक्षीशास्त्र वालों के यहाँ न मिलेगी। उनके पास गौरैयाँ हैं, फँसाकर पकड़ लिये गये पक्षी। और यह ••• यह केवल कैलाश मे मिलती है। मरेगी नही।"

"तुम्हे कहाँ से मिली?"

"काशी से। एक संन्यासी ने दी थी।"

फिर वह उसकी कहानी कहने लगा। सभी कुतूहल से उसे सुनने लगे।

मुक्ति

बोट नहर से नदी में आयी तो ड्राइवर ने इंजन खोल दिया। नदी मे नीचे तक लहरों को बनाते हुए वह यान तेजी से चल दिया था। बीच-बीच मे घृणासूचक शब्द बना रहा था। उसकी चाल मे एक प्रकार का विराग देखा जा सकता था। मानो कह रहा था कि 'वही खड़ा रह!' शायद किसी नापसन्द को लिये बिना जा रहा होगा। दूर तक दौड़कर वे निराश होकर किनारे कहीं खड़े रह गये होंगे। जो भी हो, उस बोट की गति मे एक प्रकार की हृदयहीनता दिखाई दे रही थी।

बोट के यात्रियों में चार-पाँच बालक भी थे। वे साथी थे। दोनो किनारों को देखते मजा ले रहे थे। पेड़-पौधे पीछे दौड़ते। लहरें उठकर किनारे तक चढ़ती। किसी घाट पर रखा एक घड़ा लहरों मे उठकर नदी की ओर बह आया। लड़को के लिए वह बढ़िया मजाक बना रहा।

एक लड़के ने बोट के अन्दर एक विशेष चीज देखी। उसने दोस्तो से कहा, "देखो, एक चिड़िया।"

वह उस ओर बढ़ा।

एक यात्री बोट के नीचे के हिस्से पर बैठा था। सामने दो तल्लों वाली एक छोटी पेटी थी। उसके नीचे का हिस्सा लोहे की छोटी तीलियो वाला पिंजड़ा था। सोने के रग की एक छोटी चिड़िया उसके अन्दर बैठी अपनी सुन्दर चोच से कोई आवाज दे रही थी। ऐसी सुन्दर चिड़िया को आज तक बच्चों ने नही देखा था। वे उसे घेरकर बैठ गये।

उस यात्री ने पेटी के ऊपर के तल्ले का ढक्कन खोलकर एक डब्बा उठाया और उसमे पड़े सिक्के गिनने लगा। तब चिड़िया दूसरे बोल बोली। वह कुछ कह रही थी। सिक्का गिननेवाला शायद वह

एक बिन्दी के समान प्रत्यक्ष हो जाती।

वह चिड़िया उड रही है। पंख पसार कर तेज उड रही है। वह करतब दिखा रही है। वह उस ऊँचाई तक उड गयी, जहाँ दूसरी चिड़ियाँ जा नही पायी। वहाँ से उसने नीचे देखा : सब कितना छोटा है ! कितना विशाल संसार ! कैसे-कैसे दृश्य ! लम्बे-लम्बे खेत, हरे-भरे बाग, बड़े-बड़े नगर, विशाल समुद्र—सब एक साथ दिख पड़ा।

वह चहक उठी, फिर चहकी। लगातार चहकती रही। गला फटता नही। चोंच टूटती नही। वही चाहती है वह। चोंच उठाये बिना वह जोर से चहकी। उसे लगा कि उसकी आवाज दिगन्तो मे प्रतिध्वनित हो रही है।

अँधेरा हो गया तो वह क्या करेगी ? उसे पिंजडा नही। दूसरी चिड़ियाँ उसे जानती हैं क्या ? अपने घोसलों मे उसे प्रवेश देंगी क्या ? उडते-उड़ते ऐसे स्थान पहुँचे जहाँ धान के खेत नही, तो क्या करे ? उसे कुछ खाना नही है। अँधेरे की ओर उड़ेगी, प्रभात में भी उड़ती रहेगी। उसे उडते ही रहना है, चलते रहना है। समुद्र और स्थल के पार जाना है। उड-उड़कर आसमान के छोर तक पहुँचना है।

उसकी दृष्टि से भी वह ओझल हो गयी। नही, सूर्यमण्डल मे एक बिन्दी के समान वही दिखाई पड़ रही थी। ध्यान से देख रहा था वह, कि तभी सूर्य की उज्ज्वल आभा मे वह छिप गयी।

बोट की गति और बढ गयी थी। चिड़ियावाला वैसा ही खड़ा था। बोट की तरफ एक चिड़िया आती दिखाई दी। उसने कोई प्यारा नाम पुकारा। चिड़िया पास आकर फिर ऊँचे उड गयी। वह किसी दूसरी तरह की चिड़िया थी।

उसने बोट रोकने या फिर धीरे-धीरे चलने को कहा। उसकी चिड़िया लौट आयेगी। वह कभी कही नही जाएगी। पर किसी ने उस पर ध्यान नही दिया।

उसने उस बालक को पकडा, जिसने पिंजड़ा खोल दिया था। चिड़िया की किसी ने डेढ़ सौ रुपये कीमत आँकी। वह रकम उसी से वसूली जाएगी।

वह फिर बोट के ऊपर चला गया। चारो ओर देखा। स्वच्छन्द होकर कई चिड़ियाँ उड़ रही थी। केवल वही एक दिखाई नही पड़ रही थी।

किसी ने पूछा, "पहले भी कभी वह इस तरह उडी थी ?"

"पिंजड़े के बाहर चली जाती थी, उड़ती नही थी। मेरी प्यारी ... उड-उड़ कर पंख थक जाने से कही गिर गयी होगी।"

वह सिसक-सिसक कर रोने लगा। विशाल खेतो को देख वह उत्साह से उड गई थी। लौट आएगी ही। उसके हाथ से खाना चुगेगी, नही तो वह कैसे जिएगी ?

"यह पार्वती देवी के पालतू पक्षियों में से है। रोज इसे खिलाने के बाद ही देवी पानी पीती। पर कोई पंख गिर जाता तो फिर वह चिड़िया वहाँ रह नहीं सकती। ऐसे ही वह मनुष्य के बीच आ गयी। एक अपूर्व घटना है यह !"

एक बूढ़े ने पूछा, "वह अंग जहाँ से पंख झड़ गया, क्या देखा जा सकता है?"

"हाँ, जी।"

चिड़िया कुछ बोलने लगी। बूढ़े ने एक प्रश्न और पूछा, "यह चिड़िया क्या कह रही है?"

वह हँसने लगा।

बूढ़े का प्रश्न, "कैलाश की सारी बातें यह जानती होगी ?"

वह इस भाव से हँसा कि चिड़िया ने सब बताया है और वह सब जानता है।

"पर क्या तुम बता सकते हो ?"

वहीं एक बालक माँ को तंग कर रहा था कि उसे एक आना चाहिए। माँ उसे डाँट रही थी। कुछ यात्री आपस में बोल रहे थे कि इतनी विदग्ध चिड़िया से भविष्य का पता लगायें तो ठीक होगा। तभी चिड़िया का मालिक सारी चीजें पेटी में रखकर उठ खड़ा हुआ।

बोट आगे बढ़ रही थी। लगा कि उसकी गति तेज हो गयी है। पके धान के खेतों के बीच से होकर एक नीली रेखा के समान पम्पा नदी बह रही थी। कुछेक चिड़ियाँ फुदकती कूदती और आसमान की ओर उड़ती दिखाई दी। समृद्धि और आजादी का सन्देश लेकर मानो पश्चिमी हवा उन चिड़ियों को दुलार रही थी।

पिंजड़े के पास बैठे एक लड़के ने धीरे से एक सीखचा हटा दिया। द्वार खुल गया। चिड़िया चहक कर उड़ गयी। बेचारा मालिक डर गया। बोट में बैठे लोग दंग रह गये। मालिक चिल्लाया। वह नटखट बालक माँ की गोद में जा छिपा।

चिड़िया पश्चिमी किनारे किसी बाड़े पर जा बैठी एक दूसरी चिड़िया को छूते हुए आगे बढ़ गयी। वहाँ की चिड़िया भी उसके पीछे उड़ चली। पर पहले वाली चिड़िया-जैसी तेजी नहीं थी उसमें। कुछ दूर गयी ही थी कि वह एक मादा चिड़िया को घेरकर फिर उड़ने लगी।

चिड़िया का मालिक लपक कर बोट के ऊपर पहुँचा। बोट में बैठे सब चिड़िया की गति देख रहे थे। पर हजारों चिड़ियों के बीच कोई उसे पहचान नहीं पा रहा था। पर उसने उसे देख लिया। वह उठती, गिरती, छिपती दिखाई देती, और फिर नारियल के पेड़ों के पीछे गायब हो जाती। फिर नीले आकाश पर

विरासत[1]

एक दिन सवेरे वह भिखारी घानी पर पीठ लगाये मृत दिखायी दिया। घानी में एक छोटी-सी पोटली और उस पर एक तलवार रखी थी। बाजार के दूकानदार और दूसरे लोग वहाँ जमा हो गये। सभी सहानुभूति के दो-चार शब्द कहने लगे।

बेचारा निरुपद्रवी था, पता नहीं किस जगह का है! यहाँ आये दो साल हो गये थे उसे। किसी से बोलता नहीं था। 'नायर' जाति को छोड़कर किसी का कुछ खाता-पीता नहीं था। घानी पर अंकित वाक्य पढ़ने की वह कोशिश किया करता। रात को चबूतरे पर सो जाता। कपड़े में लिपटी एक तलवार योद्धा की तरह पकड़े वह चलता था और इसे छोड़कर उसमें पागलपन का दूसरा कोई लक्षण नहीं था।

पुलिस ने आकर लाश की परीक्षा की।

वही एक पुरानी तलवार थी। पोटली में एक ताँबे का पट्ट और एक खत था। ताँबे के पट्ट पर कुछ लिखा था। किसी पुरानी लिपि में, पढ़ा नहीं जाता। खत में लिखा था :

उस भिखारी की लाश राहगीरों को झंझट बन जाती है, जो रास्ते के किनारे मर जाता है। वह चाहे सीधा लेटा हो या सिकुड़कर या फिर बन्द आँखें और खुले मुँह पड़ा हो, राहगीर के मुँह पर बल पड़ जाते हैं। भिखारी एक बड़ा प्रश्नचिह्न है, जो कई जवाबों से भी नहीं मिट पाता।

उस भिखारी का जीवन-चरित्र वैसे अज्ञात नहीं कहा जा सकता जो रास्ते के किनारे मर जाता है। हर अनाथ-प्रेत को कोई-न-कोई सन्देश देना होगा। अन्तिम प्यास में खुला हुआ मुँह—एक

---

१. पारपर्यम्

उसने उसे पास कही किनारे उतारने को बोट वाले से कहा। तब किसी ने पूछा, "उतर कर तुम कहाँ से उसे पकड़ोगे ?"

"सो तो ठीक है !" वह फिर रोने लगा। उसने क्षितिज के कोने-कोने मे आँख दौडायी, पर चिड़िया की दुनियाँ उसके पार थी। आँसुओं के कारण वह ठीक से देख नही पा रहा था।

साँझ को सभी चिड़ियाँ अपने-अपने घोंसले लौटती दिखाई दी। तो, उसकी चिड़िया गयी कहाँ ?

कोल्लम् में बोट से उतर कर खुले पिजड़े के साथ वह धीरे-धीरे चलने लगा। तब भी वह आसमान पर उड़ रही चिड़ियों को देख रहा था।

× × ×

बोट के रास्ते में कही बाडे पर सोने के रंग की एक चिडिया अकेले बैठी चहक रही थी। वह किसी को बुला रही थी। खेतो में फसल की कटाई हो रही थी। चिड़ियाँ उड़ रही थी। पर वह अपरचित थी। कभी-कभी बोटो के ऊपर वह मँडराने लगती। कभी बोट के अन्दर पहुँच जाती। उसके लिए खाना वर्जित हो गया। और अब···अब तो किसी के पास आने पर भी वह उड़ नही पा रही थी।

पानी अन्दर गिरने लगा था। घर पर खाने को भी कुछ नहीं रह गया था।

उन केरलीओं को वह कहानी बतानी नहीं है, जिन्होंने 'नायर' परिवारों का पतन देखा है। अपने यौवनारम्भ के साथ, घर को बेचने के कागज़ पर मैंने हस्ताक्षर किये। हम वहाँ से अलग हो गये।

पर युद्ध के लिए गये मामाजी की तलवार और हमारे परिवार को मिला ताँबे का पट्ट मैंने ले लिया। अगले दिन हुई घटना की मुझे आज भी याद है। मन्दिर के आँगन में तीन-चार लोग बातें कर रहे थे। मैं वहाँ से गुज़रा। किसी ने मुझे बुलाया। ज़मीन बेचने की बात पूछी। मैंने सारी बात बतायी। आखिर एक सज्जन ने पूछ ही लिया।

"अब क्या करोगे, बेटा?"

मैंने ईमानदारी से जवाब दिया, "युद्ध के लिए गये मामाजी की तलवार और ताँबे का यह पट्ट मैंने ले लिया है।"

वे ठहाका मारकर हँस पड़े। मैं सन्न रह गया। आज भी वह ठहाका मेरे कानों में गूँज रहा है।

हम कई स्थान, घर बदल-बदल कर रहे। परिवार के सभी सदस्य एक-एक कर परलोक सिधार गये। आखिर मैं और एक सयानी बुआ ही बचे। अपनी मृत्यु के समय विवश होकर बुआ ने पूछा, "अब तू क्या करेगा, बेटा?"

जीवन में पहली बार मैंने भी वह सवाल खुद से पूछा।

दुनियाँ बड़ी विशाल है न? मुझे जीने का रास्ता नहीं मिलेगा क्या? मेरी महान् विरासत मेरा साथ नहीं देगी? तलवार और ताँबे का पट्ट लेकर मैं अपने श्मशान की खोज में आम रास्ते पर चलने लगा।

एकान्त रास्तों से होकर जाते समय मैं उन मामा की याद करता जो लड़ने गये थे। उन्हें मैं अपनी आँखों के सामने देखता। कमर कसकर लड़ाई के लिए जाना। घमासान लड़ाई में उठते-कूदते, लपकते-झपटते समय यह तलवार बिजली की तरह चमक उठती ··· मैं गर्व से सिर ऊँचा करता। मैं उसी मामा का भानजा हूँ।

पुराने ज़माने से गुज़रते समय भी वह सवाल बराबर मुझे घूरकर देखता—अब कैसे जीऊँगा? पर जल्दी ही मन में मीठे सपने उठने लगते।

घर छोड़ने के तीसरे दिन भूखा-प्यासा मैं रास्ते के पास के एक घर में गया। ठण्डा पानी माँगा। रसोईघर से सब्जी की गन्ध आ रही थी। एक औरत ने पानी पिलाने के बाद, मुझे सिर से पैर तक देखा और पूछा :

"तुम कहाँ के हो?"

मुझे यह सवाल अच्छा नहीं लगा। मुझे अब तक 'सांब' ही पुकारते थे सब। औरत ने आगे पूछा :

"क्या तुम लकड़ी चीर सकते हो? मज़दूरी के साथ नाश्ता भी मिलेगा।"

बूंद पानी न मिलने से बन्द नहीं हो पाया, कौओं ने आँखें चिकोर डाली · · · · दुनिया को अच्छा सबक मिल जाता है इनसे। रास्ते के किनारे ऐसे दृश्य कम ही देखे जाते है।

मुझे भी अपनी मृत्यु के द्वारा एक संदेश देना है। मैं जन्मा था और जिन्दा रहा—मरने के लिए, इसलिए मेरे जीवन का उद्देश्य वही है। मेरा सन्देश युगो से, आगे की पीढ़ियों के कानों तक पहुँचेगा।

मेरा जन्म हुआ था, आठ कमरोंवाले एक घर में। मुझे अन्नप्राशन कराया था मेरे बड़े मामा ने, लोगों के बाबूजी ने, जिसने मुझे सोने का हार और करधनी पहनाये थे, जो लाखों की तादाद मे धान और रुपये का कारोबार करते थे।

मेरे घर का इतिहास, इतिहास से भी पुराना है। मेरे घर मे सोने का धान और सोने का ही 'कदली' था। जब मैं छोटा बच्चा था, दादीमाँ मुझे गोद मे बिठाकर कहानियाँ सुनाया करती थी, हमारे परिवार के परदादाओं की कहानियाँ।

जादूगर मामाजी ने अमावस्या की रात को चन्द्रमा को चढ़ाया था। उन्ही को अखाड़े के पीछे बिठा दिया गया है। अखाड़े मे रखी वह तलवार मेरे उन मामाजी की है, जो चेरमान पेरुमाल[1] के साथ लड़ने गये थे। सोने का धान और दस वज़न सोना उन्ही का लाया हुआ है। एक मामाजी चम्पकशेरि राजा के सेवक थे जिनके कारण इतनी जमीन करमुक्त मिली थी। तहसीलदार मामाजी को दादीमाँ ने देखा है।

मैं उन्ही मामाओ का भानजा हूँ। मुझे लगा कि, जिसने भी मुझे देखा उसकी स्मृति मे ये पुरानी बाते रही होंगी। इसलिए सब लोग मुझे 'सांब' कहकर पुकारते हैं।

मेरा बचपन बीत रहा था। उन दिनो मेरे घर पर कुछ उलझने आ पडी थी। मुझे पता नही था कि क्या हुआ है। कुछ घटनाएँ याद हैं। माँ और मामाओ के बीच झगड़ा हो गया था। उस दिन भोजन नही बना था। फिर किसी दिन बड़े मामा छोटे मामा को मारने जा पहुँचे। छोटे मामा ने विरोध किया। उस जमाने मे हर साल मेष महीने मे प्राप्त धान कम होता चला गया। धीरे-धीरे नौकर भी खिसक गये। छोटे मामा तब से खेती के लिए नही गये। नाव और चक्र कोई उठा ले गया।

साँप-वन की मूर्तियाँ गिर गयी थी। गन्धर्व का मन्दिर टूट चुका था। वहाँ हर साल मनाया जानेवाला गाने का त्योहार मनाए तीन साल हो गए। अखाड़ा एक ओर से गिरनेवाला था। जहाँ रहते थे उस घर की मरम्मत न हो पाने से

---

१. केरल के पुराने राजा।

गर्व से आधुनिक दुनिया के आम रास्ते से जा रहा होता। फिर भी मैं इस तलवार की पूजा करता हूँ। उसके लिए मैंने पढ़ा था।

इस धानी पर पीठ लगाये हुए मैं अपनी विरासत के बारे मे सोचता हूँ। मेरा अपना एक ढंग है। मैं क्यों इतना कष्ट उठा रहा हूँ? शायद उन मामाओं के पापों का फल मैं भोग रहा हूँ।

पाप? जी हाँ, वह योद्धा मामाजी लड़ाई के बाद लौटे तो सोने का थान और सोना लाये थे। लडाईवाले देश पर डाका डाला होगा। उन्हे डाकू पुकारूँ तो कैसा रहेगा? और वह जादूगर मामा—जादू तो अधर्म है। और, पिछली पीढ़ी के तहसीलदारों को तो आप जानते ही हैं।

मेरी एक विनती है। यह तलवार और तांबे का यह पट्ट मैं ढोता रहा। आगे इसे ढोनेवाला कोई नही है। इसी सराय मे इन्हे स्मारक बनाकर रखा जाए। आगामी पीढ़ियों को इसके बारे मे—लडाकू नायरों की तलवार के बारे मे—एक दारुण कहानी ही सुनानी होगी!

मुझे रास नहीं आया। मैं वहाँ से चल पड़ा। मेरे दिवंगत योद्धा मामा इसे सह पायेंगे ?

दिन बीतते-बीतते वह सवाल मुझे ज्यादा परेशान करने लगा कि मैं कैसे जीऊँगा। मुझे लगा कि मेहनत करके जीना गर्व की बात है। पर कौन-सा काम ?

एक रोज मैं रास्ते के पास वाले एक घर पर पहुँचा। गृहस्वामी बाहर द्वार पर बैठे थे। उन्होंने पूछा कि मैं क्यों आया हूँ। मैं उलझ गया। युद्ध के लिए गये मामाजी की गाथा मैं उन्हें बताने लगा। उन्होंने उसे ध्यान से सुना। पता नहीं, उन्होंने मुझे पागल या क्या कुछ समझा, मुझसे पूछा :

"पर तू इधर क्यों आया ?"

"मुझे—मुझे जीना है।"

"तू कुछ काम कर सकता है ?"

मैंने कहा कि मैं कुछ नहीं जानता, तो चले जाने का आदेश दिया उन्होंने।

उस तलवार को हाथ में लिये मैं फिर आम रास्ते पर आ गया। पुरानी गाथाओं को याद कर भूख-प्यास को किसी हद तक मिटा सका। पर वह क्या रोज सम्भव है ? आखिर मजबूर होकर, मैंने एक घर जाकर काँजी माँगी। घर-वालों ने बर्तन साफ़ करके नीचे रखने को कहा। पर···पर मैं अपने देश की सबसे श्रेष्ठ जाति का हूँ !

उसी दिन से मैं भिखारी हो गया। पर वहाँ भी मैं हार गया। सफलता के लिए भिखारी को यह जानना जरूरी है कि भीख कैसे माँगी जाती है। मैं नहीं जानता कि किसी के घर गया तो कहाँ जाकर बैठना है, कैसे सहानुभूति प्राप्त की जाए। सब घरों में जाने का डर भी है। अगर वह 'नायर' घर नहीं है तो ? यों पन्द्रह लम्बे साल मैंने बिताये। मैं भूखे पेट चलता रहा। आखिर यहाँ आया। यह धानी और सराय मेरे घरवालों ने बनवायी थी। अपने परिवार के आखिरी सदस्य को लेटकर मरने के लिए बनवायी होगी।

इस धानी पर पीठ लगाये बैठे मैं कई बातें सोचता रहा हूँ। मेरा सोचने का ढंग बहुत बदल गया है। पर मेरा स्वभाव नहीं बदलता, शायद बदलेगा भी नहीं।

यह तलवार और ताँबे का यह पट्ट परिवार में रखा नहीं जा सकता था। जैसे जो भिखारी रास्ते के किनारे मर जाता, उसकी लाठी भी उसी के साथ दफनायी जाती, वैसे इस तलवार का उस मामा के साथ ही संस्कार होना चाहिए था। इतना जानना ही काफ़ी था कि यह तलवार पुराने जमाने का एक हथियार थी। लेकिन उसके साथ कुछ कहानियाँ जुड़कर उसे एक अयथार्थ प्रसिद्धि मिली। मेरी और अपने मामाओं की कल्पना इससे गुमराह हो गयी।

रूप परिहास्य बन जाता, जब मैं सदियों पहले बनायी किसी तलवार

घर बना-बनाया-सा लगता था। अपनी चिन्ताओं को मैं आप निगल जाती।

बहनोई प्रेम के अवतार ही थे। हमारे लिए तो हमेशा एक विश्वसनीय आसरा थे। बाबूजी का कर्ज चुकाने के लिए उन्होंने रुपया दिया था इसलिए कि उनको लगा था कि दीदी ऐसा चाहती थी। मगर दीदी ने कभी कुछ कहा नही था। हमारी माँ को वे सगी माँ के समान प्यार करते थे। दीदी माँ को इतना अधिक प्यार करती तो वे कैसे उन्हे उतना प्यार किये बिना रह सकते! बच्चो और दीदी के लिए कई गहने हाल में बनवाये थे। दीदी से सलाह लिये बिना कोई मामला तय नही करते। सारी जमीन-जायदाद स्वेच्छा से दीदी के नाम कर दी थी, बिना किसी शर्त के। दीदी ने कभी उसके लिए जोर नहीं डाला था। एक दिन उसके पट्टे-परवने ला दिये, बस। तब भी दीदी को न तो प्रसन्नता हुई और न ही उनके बर्ताव मे कोई अन्तर आया। बहनोई बेचारे! उन्हे जाने कुछ मिलना जरूर बाकी था।

हमदर्दी के साथ ही मैं बहनोई के बारे में सोच सकती हूँ। एक दिन मैं कह बैठी कि वे उतने कुशल नही है तो माँ ने मुझे कोसने मे कोई कसर नही की। मुझे लगा, उन भलेमानस को बहुत कुछ सहना पड़ेगा। वे किसी दारुण सच्चाई की अभिव्यक्ति के सिर्फ एक उपकरण थे। दीदी के पास जाकर वे यों बातें करने लगते तो मैं सोचती—क्यों वे इतने अभिभूत और आविष्ट हो गये हैं? इस नाटक के दुःखमय अन्त की तीव्रता बढ़ाने के लिए उन्हे इतना प्रेममय हृदय दिया गया होगा! कभी वे दीदी को सिर्फ़ देखते रहकर ही खुश हो लेते। उन्होने क्यों दीदी से शादी की?

शायद दीदी भी उसी प्रकार प्रेम करती होंगी, वैसा ही आवेग रखती होंगी। हो सकता है, वे उसे जता नही पाती हों।

मैं जिसकी आशंका से चौंकती रही आखिर वह घटित हो ही गया। एक दिन वे दीदी और बच्चों को ले आये। वह आगमन खास कुछ मतलब रखता था। वह अग्निगर्भ सोता फूट गया, अन्तर्धारा ऊपर आ गयी। बच्चे हल्ला मचाते हुए दौड़े आकर मेरे गले लग गये। मगर वह घर टूट गया था। मैंने पहले कभी बहनोई के दुःख का इतना गम्भीर रूप नही देखा था। वे हम लोगों से कुछ बोले नहीं। पाँच मिनट भी नहीं ठहरे और चले गये। बच्चों से विदा भी नही ली। वे दूर चले गये तो गोमती 'बाबूजी, बाबूजी' कहकर रोने लगी। पहले कभी उसे अपने बदन से सटाकर चूमे बिना वे कही नही जाते थे।

दीदी के चेहरे पर कोई खास भाव-विकार नही दिख रहा था। मगर एक परम मुहूर्त का सामना जो कर रही थी उसकी अरुणिमा उनके चेहरे पर झलक रही थी। लगता था कि वे अपने आप से पूछ रही हों कि वह क्षण बीत गया है कि नही।

पतिव्रता

उस घर मे पति-पत्नी एक दूसरे को बहुत प्रेम करते थे। बच्चे भी हँसी-खुशी में बड़े हो रहे थे। वहाँ किसी को कोई शिकायत नही थी। सरसरी निगाह मे कितना ऐश्वर्यपूर्ण था वह घर! कौन नही चाहता ऐसा घर!

मगर मुझे लगता था कि उस घर के अन्तरतम मे, भेदभरी तह में, कोई अग्निकुण्ड सुलग रहा है। दुःखद परिणामवाले किसी समाचार की आशंका में मेरा शंकालु मन बेचैन हो उठता था। उस घर मे किसी सारभूत वस्तु की कमी थी; मगर वह एकदम नही जानी जा सक रही थी। कोई अज्ञात और शक्तिशाली अन्तर्धारा उनके जीवन को विशेष गम्भीर बनाये हुए थी। हाँ, नादान बच्चे ठहाका मारकर वातावरण को अवश्य मुखर बनाये रखते। उस वातावरण से ताल-मेल तो कल-कल करता बहनेवाला एक उथला वन-झरना ही रखता। वस्तुतः थी वहाँ नीरव बहनेवाली एक गहन जल-राशि ही!

माँ ईश्वर की करुणा मे अटल विश्वास के साथ कहती, "उसके बारे मे मैं निश्चिन्त हूँ।" माँ भी उस जिन्दगी की असलियत नही पहचान पायी थी। वे बड़ी बेटी की खुशहाली और भाग्य के बारे मे कहती तो मेरा मन अपनी सारी आशकाएँ उन्हे बता देने के लिए आतुर हो उठता। लेकिन प्रमाणपूर्वक बताने के लिए मेरे पास कुछ भी तो नही था। मेरी वह निरानन्द आशका, जिसे साधारण विवेक अकारण अथवा एक पुरोभागिन के सन्देह की छाया करार देती—वह मैं कैसे किसी और को समझा पाऊँ! मेरी आशंका के प्रमाण के तौर पर कोई घटना नही, कोई तेवर नही। मैंने किसी से उसके बारे मे कुछ नही कहा। वह घर टूट जाएगा। मगर कब? कैसे? क्यो? कोई जवाब नही। कुल मिला कर वह

चरित्र के बारे में—वह निर्मल नहीं था ऐसा कहने का साहस नहीं होता था। शंका करने की तो कहीं कोई गुंजाइश ही नहीं थी।

"नहीं, ऐसा दोषारोपण न लगायें। कोई पराया आदमी कभी यहाँ नहीं आया।" बहनोई ने कहा था। सच्चाई यह थी कि दीदी और बहनोई एक अबूझ पहेली जैसे थे।

वर्षों पहले, जब मैं एक छोटी-सी लड़की थी, एक घटना घटी थी। उसके कुछ अंशों की एक धुंधली-सी याद ही आज मुझे है। उन परस्पर असंबद्ध टुकड़ों को तर्क के सहारे आपस में जोड़ने की कभी-कभी मैं कोशिश करती। मगर उन दृश्यों को धुंधला करनेवाली मकड़ी की जाली झाड़ देने की मेरी कोशिशें कामयाब नहीं होतीं। दीदी के जीवन का एक रहस्यमय पहलू था वह। वह रहस्य शायद इस समस्या का समाधान दे पाएगा। मगर वह एक सपना था न! क्या वह सच था?

दीदी अपनी सबसे छोटी सन्तान के प्रसव के लिए तब मायके आयी हुई थी, उन दिनों बहनोई नया मकान बनवा रहे थे। प्रसव के बाद दीदी अर्से तक मायके में ही रही। मैं बहुत छोटी थी। दीदी दालान की दक्खिनी बाड़ के पास खड़ी होकर देर तक किसी का इन्तजार किया करती'''उन दिनों वे खूब सुन्दर थीं। एक रात आधी नींद में एक गरम साँस मेरे ऊपर पड़ी'''और''' एक बार कोई अपरिचित हाथ मेरी देह पर पड़ा। मैं चौंक गयी मानो आग छू गयी हो।'''एक और रात कोई कह रहा था—'सात दिन में मौत हो जाएगी!' मुझे याद है, हाँ यही तो था वह वाक्य।

अगले दिन बहनोई दीदी को ले जाने के लिये आये। लेकिन दीदी ने जाने से इनकार कर दिया। बाबूजी बिगड़ पड़े। अन्त में वह राजी हो गयी। मैं भी उनके साथ गयी।

थोड़े दिनों बाद, बाहर कहीं जाकर लौटने पर, बाबूजी ने किसी की मौत की खबर दी। वह आदमी दो-चार बार हमारे घर भी आया था। मुझे याद है। एक सुन्दर पुरुष! गोरा रंग, घनी मूँछें, हँसमुख चेहरा। जिसने उसे एक बार देखा हो वह उसे कभी भूल नहीं पाएगा। मुझे लगा कि उस आदमी के साथ दीदी का कोई अवाच्य सम्बन्ध रहा है।

उन धुंधली यादों की रोशनी में मैं दीदी को गौर से देखती रहती। उन्होंने उस गन्धर्व का लाड़-प्यार पाया था? कौन था वह? कोई भी क्यों न हो, मगर मरकर मिट्टी में मिल चुका था। पर वे शायद उसे भूल नहीं पातीं। वे पत्नी हैं। पत्नी कई तरह से पराधीन होती है। उसे अपने आप पर नियन्त्रण रखना होता है। विधि द्वारा अनुमोदित सुख ही वह भोग सकती है। निषिद्ध फल चखने का लोभ उस पर सदा हावी रहता। उस पुरुष ने उन्हें जगाने की कोशिश की

मुझे लगा कि वे दोनों टूटकर दूर चले गये हैं। घर पर और कोई भी यह नही समझ पाया था। बाबूजी ने पूछा, "केशव पिल्लै बिना कुछ बोले क्यो चले गये ?" माँ ने पूछा, "क्यो री, तुम आपस मे झगड़ बैठे हो ?" गोमती बोली, "नानी, कुछ दिन पहले बाबूजी ने माँ को जोर-जोर से कोसा था। माँ अकेली बैठी-बैठी कुछ याद करती और रो उठती है। फिर आसमान की ओर देखती और हाथ जोड लेती है।"

महीने बीत गये। वे नही आये। दीदी ने कोई खोज-खबर नही ली। बाबूजी और माँ शंकित हो उठे। एक दिन बाबूजी ने पूछा, "क्यो बेटी, तुम दोनो में कोई अनबन हो गई है क्या ?"

कोई जवाब नही। बार-बार पूछा। जवाब ही नही। मानो उसके दोनो ओठ आपस मे सी दिये गये थे। उस चुप्पी मे उस नारी का गर्व-गह्वर देखने लायक था।

"तुम दोनों मे कोई झगड़ा हो गया क्या ?" बाबूजी ने फिर एक बार पूछा।

"नही।"

"फिर यह सब······?"

कोई जवाब नही था।

"तू अब जाना नही चाहती ?"

"नही।"

उस 'नही' की दृढ़ता ने मुझे चौंका दिया। उन दो अक्षरों मे इतनी ताकत ? उनके पीछे गहरा चिन्तन-मनन था, और थोड़ी राहत भी। बहनोई बेचारे ! ये दो अक्षर हैं उस आवेग का प्रतिदान !

'नही'—अर्थात् अब और यह जुआ नही वहन कर पाऊँगी।

दीदी को उनके खिलाफ कोई शिकायत नही थी। यह नही कह सकती कि वे प्यार नही करते थे। वे सभी जरूरतें पूरी करते आये थे। धन-सम्पत्ति की कोई कमी नही थी। ऐसा पति सभी को नसीब नही होता। मगर उस 'नही' में इतनी ताकत कहाँ से आयी ? बाबूजी और माँ के लिए यह एक समस्या थी।

एक स्त्री यों ही—वह भी चार सन्तानो को जनने के बाद—अपने पति को छोड़ बैठेगी ? मैंनें सोचा, जिन्दगी आखिर एक समझौता है न !

असलियत का पता लगाने के लिए बाबूजी एक बार उनसे मिले। उनके बर्ताव मे कोई बदलाव तो नही आया था। पहले जैसे स्नेह और आदर से मिले थे। बातचीत के दौरान यह बात छेड़ने मे बाबूजी को बहुत ही दिक्कत हुई थी।

कहा तो यही जा सकता था कि दीदी थी तो आज्ञाकारिणी पत्नी और बड़ी ही कुशल गृहिणी। वहाँ के जीवन मे कोई अव्यवस्था नही थी। उनके

कि उसे अपने घर जाना है। बाबूजी उसे ले जाकर छोड़ आये। मगर तीसरे दिन वह किसी के साथ लौट आयी। बच्ची जोर-जोर से रोती हुई दौड़ी आयी। हम सब व्याकुल हो गये। देर तक पूछ-ताछ करने पर उसने कहा—

"हमारे घर मे और कोई रहते है। मैं दखिनी कमरे मे पैर भी नही रख पायी। डर गयी।"

अजान बच्ची सिसकने लगी। उसे और भी शिकायतें थी। उसकी थाली मे और कोई खाता है, उसकी छोटी पेटी उसे दिखाई नही दी, और···

हम उसे ढाढस नही बँधा पाये। वह बडी हो जाए···।

कई साल बीत गये। दीदी के बाल पक गये। किसी के इन्तजार मे रहना उन आँखों की आदत-सी हो गयी थी। वे देर तक समाधि में डूबी-सी बैठी रहती। जाने क्या-क्या विनती करती होती! मरे फिर जनमेंगे?

गोमती बडी हुई। उसमे समझदारी आयी। एक दिन दीवार का वह धब्बा उसने खुरच कर मिटा दिया।

दीदी ने मुझसे पूछा, "ये बच्चे मुझसे घृणा करते होगे। होगे न बहिन?"

मेरे पास कोई जवाब नही था। मैंने मानो अपने आपसे कहा, "हाँ, वे अपने पिता को प्यार करते हैं। सो उचित भी है।"

लगता था कि उस वक्त पूछती तो दीदी सब कुछ कह देती। किसी से वह सब कभी बताये बिना वे नही रह सकती थी।

"उनके पिता को तुमने उनसे क्यो छिना दिया?" मैंने पूछा।

दीदी ने उत्तर दिया—

"मैंने कोशिश की थी। मैं सह नही पाती थी—तब भी मैंने कोशिश की थी। वह वैसा ही होगा, बहिन! कोई क्यो शादी करता और बहू पालता? इसलिए कि वह उनकी छत के नीचे किसी और को याद करती रहे?"

"वह कौन है, दीदी?"

"वे ही, बहिन! वे ही जिन्हें तू जानती है। मेरे चली आने के सातवें दिन, जैसा कहा था उसी तरह, जो मर गये।"

दीदी फूट-फूटकर रो उठी। कुछ देर बाद मैंने पूछा, "उनको पता है?"

"नही।"

"फिर तुम दोनों क्यों अलग हो गये? तुम सुलह करके जी नही सकते?"

"मैं पतिव्रता हूँ, बहिन।"

"पतिव्रता?"

"हाँ।"

मेरी कुछ समझ में नही आया। दीदी को भी वैसा लगा। उन्होंने वह परम रहस्य की बात मुझे समझायी—

तो नियन्त्रण के अधीन संकुचित रही उनकी शिराएँ उन्हें तीव्र रूप में चौंकाकर विजृंभित हो उठी होंगी। कोई ब्याही हुई औरत जब पराये पुरुष के चंगुल में फँस जाती है तो उसके लिए अपना पति तुच्छ और निकम्मा जैसा बन जाता है। अनुशासन के कड़े नियन्त्रण में पड़कर दबी भावनाएँ जब जाग उठती तो अनुभूतियाँ चिरस्थायी बन जाती हैं।

मगर कौन जान पाया है कि स्त्री की भावनाएँ कैसे-कैसे काम करती हैं? एक बार सीमा लांघ जाने पर वह उसके लिए उतावली हो जाती है। उस दिन तक वह जिन चीज़ों को पवित्र समझती आयी होती है, उन्हें कुचल देती है।

मैं दीदी से पूछने में हिचकती रही। कई बार मैंने चाहा था। मुझे लगता कि वह भी कुछ कहना चाहती है। मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ।

दीदी अक्सर सोच-विचार में डूबी बैठी रहती मानो कोई गम्भीर-सी बात उन्हें याद हो आती हो। वे दक्खिन की ओर देखती रहती। वह पुरुष अब कभी आएगा? शायद इसी कारण से उनकी आँखें डबडबा आती हों।

बाबूजी और माँ ने दीदी को खूब कोसा। दिन में एक-दो बार बाबूजी उन्हें कोस उठते। उनका यह कहना शायद सही ही था कि सबकी जिम्मेदार दीदी है। वे बहनोई की खूब प्रशंसा करते। दीदी ने अपने पति के खिलाफ़ कुछ भी नहीं कहा। कहने को कुछ था भी नहीं। एक दिन गोमती को गोद में बिठाये दीदी को कहते सुना—"तेरे बाबूजी···" वे गोमती से उसके पिता के वात्सल्य की कोई कहानी कह रही थी।

एक साल बाद बहनोई आये। सारी ज़मीन-जायदाद कानूनी तौर पर लौटा देने की माँग रखी। दीदी पूरे मन से सहमत हो गयी। उनका जवाब सुनकर बहनोई चौंक गये। उन्हें ऐसी आशा नहीं थी। कुछ दिन बाद वे फिर आये—यों ही। दीदी एक लफ़्ज़ भी नहीं बोलीं। अगली बार उन्होंने तलाक की माँग की। उस पर भी दीदी को कोई एतराज नहीं था। छः महीने बाद तलाक हो गया। ऐसा भी सुना कि उन्होंने दूसरी शादी कर ली है।

हमारे घर के दक्खिनी कमरे की दक्खिनी दीवार पर एक जगह एक उँगली की छाप दिखाई दे रही थी। पता नहीं वह किसने कब वहाँ रख दी थी। मैंने दीदी को उसे घूरते हुए रंगे हाथों पकड़ लिया। उस रात—वह चाँदनी से भरी रात थी—दीदी और मैं आँगन में टहल रही थी। वह बोली—

"बहिन, यहाँ कहीं एक प्रेममय आत्मा हमारे अनदेखे छिपी बैठी है।"

"वह कौन है, दीदी?"

कोई जवाब नहीं था। दीदी निरुद्धकण्ठ हो गयी। मैंने देखा, उनकी आँखें आँसुओं से भर कर चमक रही हैं।

उसके बाद, एक दिन गोमती ने अपने नाना को यह कहकर परेशान किया

फ़ौजी[1]

थाने में भीड़ दिखी तो वह उस ओर बढ़ गया। हरेक की लम्बाई मोटाई नापी गयी, नाम-धाम पूछा गया। वह क्या जवाब देता! मगर उस दिन के डेढ़ सौ रंगरूटों में वह भी ले लिया गया।

उसी दिन वे ले जाये गये। उल्लासमय थी वह यात्रा। तीनों समय अच्छा-ख़ासा भोजन मिलता था और निजी खर्च के लिए रुपया भी। साथी भी अच्छे थे।

रेलगाड़ी नयी-नयी जगहों से आगे बढ़ रही थी। कई बड़े-बड़े नगर दिखे। आठ दिन बाद वे एक जगह उतारे गये।

ट्रेनिंग का काल कष्टकर था। मगर यह जानकारी कितनी बड़ी राहत थी कि तीनों जून भोजन जरूर मिलता। इतना क्या कम था? जीवन की परिधि धीरे-धीरे विशाल होती गयी। तरह-तरह के अनुभव उसे भावमय बनाते रहे। यह विचार मिटता गया कि वह भिखमँगा है। अब बिछावन के बिना नींद नहीं आती। सिर को थोड़ा ऊँचा करके लेटना होता था। जीभ अब स्वाद पहचानने लगी थी।

इस बोध के कारण कि करने के लिए कुछ है, जीवन समृद्ध और ठोस हो गया। उसके भी कुछ कर्तव्य हैं, अधिकार हैं।

वह टुकड़ी दो हज़ार मील दूर किसी जगह ले जायी गयी। फिर और एक जगह और वहाँ से फिर एक तीसरी जगह। कुछ दिन बीत गये। अब उसे हिन्दुस्तानी आती थी। भारत के सभी प्रमुख शहर उसने देख डाले थे। जीने की कला भी उसने कुछ-कुछ सीख ली थी। पास में पैसा भी हो गया, सरकार से मिलने को बाकी जमा भी था।

---

१. पट्टालक्कारन्

"मैं फिर गर्भवती नहीं हुई।"

"फिर क्यों वहाँ ठहरी···?"

दीदी यन्त्रवत् बोली—

"अपने बच्चों के पिता के साथ रही।"

मेरे सामने वह कहानी स्पष्ट हुई।

थोड़ी देर बाद दीदी बोली—

"मैं ध्यान लगाती हूँ, मैं प्रार्थना करती हूँ—सपने में ही सही, मेरे भगवान् प्रकट हों। नहीं, आज तक नहीं हुए। हर सवेरे मैं निराशा की गहराई से जाग उठती हूँ।"

करना था वह सब तीस दिन मे कर लेना था।

रामन नायर ने भी छुट्टियो का कार्यक्रम बनाने की कोशिश की। मगर करने के लिए कुछ न होने के कारण कोई प्रोग्राम नही बन पाया। सुस्ती के तीस दिन पाँव पसारे सामने पडे थे।

पास लेटे पालघाट वाले ने रामन नायर से पूछा, "घर पर कौन-कौन हैं ?"

"कोई नहीं।"

"छुट्टियो मे कहाँ जाने का इरादा है ?"

कोई जवाब नही था।

साथी ने फिर पूछा, "घर तिरुवनंतपुरम् मे है न ?"

रामन नायर और असमंजस मे पड गया। क्या जवाब दे ? उसने इतना ही कहा—

"वहाँ पर मै फौज मे लिया गया था।"

"फिर घर कहाँ है ?"

"मुझे नही जाना। मुझे नही चाहिए छुट्टी।" इस बार रामन नायर चिढ़-सा गया।

साथी ने पूछा, "यार, तू चिढ़ क्यो रहा है ? तू घर से नाराज होकर चला आया हो तो इसमे मेरा क्या कुसूर ?"

संवाद वही समाप्त हो गया।

रात के तीसरे पहर के अन्त मे भी वहाँ एक आदमी बिना सोये पडा था—रामन नायर। उसे अचरज हो रहा था अपने नाम पर। यह नाम किसका दिया हुआ है ? कैसे मिला यह जातिसूचक शब्द 'नायर' ? बचपन मे जब भीख माँगता गली-गली फिरता था तब किसी ने यह नाम लेकर उसे नही पुकारा था। तब कब से यह नाम पडा ?

"मुझे नही जाना। मुझे नही चाहिए छुट्टी।"

ये वाक्य शाप के समान उसके अपने कानों मे गूँजते रहे। उतनी दृढ़ता के साथ नही कहना चाहिए था। केरल मे कहीं होगी वह अभागिन नारी—माँ ! नही तो वह पुरुष—पिता ! या फिर जिस पेट मे कभी वह पड़ा था उसी से आगे या पीछे बाहर आया हुआ कोई ! अथवा उसे याद करने वाला कोई-न-कोई इस दुनिया मे हो— क्या यह असभव है ? शायद ढूंढने पर कोई मिल जाए !

उसने कई नगर-गाँव देखे हैं, कई जाति-पाँति के लोगो के सम्पर्क मे आया है, कई बोलियाँ सुनी हैं। मगर केरल ! वहाँ भीख माँगता चले तो भी कोई हानि नही ! वहाँ का ठण्डा पानी खास किस्म का है, उसका एक निजीपन है।

एक दिन बॉस ने इत्तिला दी कि चाहें तो वे एक महीने की छुट्टी पर अपने-अपने घर जाकर सगे-सम्बन्धियों से मिलकर आ सकते हैं। जो जाना चाहते हैं वे जल्दी अर्जी दे दें। उस फ़ौजी खेमे के भीतर का उस दिन का उत्साह और उमंग वर्णन के परे थे। वह भी उसमें शरीक हुआ। मगर उसकी उमंग में कहीं कोई मार्मिक कमी थी। उसकी उमंग जैसे एक दिखावा थी।

उसने भी खाना-पूरी करके फार्म दे दिया। उस रात भोजन के बाद वे चार-पाँच के दलों में बैठकर बातें कर रहे थे। मैसूरवाले ने तिरुनेलवेली वाले से पूछा, "हम साथ-साथ चलेंगे न ?"

"मुझे कल शाम को जाना है।"

"अच्छा, मैंने भी यही तय किया है। अपनी बेटी को देखे कितने दिन हो गये !"

मैसूर वाला थोड़ी देर जाने क्या कुछ याद करता रहा। उसका चेहरा ऐसा चमक रहा था मानो वह बेटी को अन्तर्नेत्रों से देख रहा हो।

तिरुनलवेली वाले ने कहा, "मेरी बूढ़ी माँ—उसे बताये बिना मैं चला आया था। मैं इकलौता बेटा हूँ।"

उसे याद करने की कई बातें थीं। अपने आपसे वह बोला, "बेचारी झोंपड़ी में मेरी बाट जोहती बैठी होगी !"

पालघाट वाले ने रामन से पूछा, "तुम कब जा रहे हो ? हम साथ-साथ चलेंगे न ?"

रामन नायर ने यान्त्रिक रूप में जवाब दिया, "क्या ?"

मद्रासी ने सलाह के अंदाज़ में धीरे-से पूछा, "तीस दिन से ज्यादा रुक जाने का कोई उपाय है ?"

पालघाट वाले ने जवाब दिया, "तार दे देना कि बीमार हूँ। मेरा भी यही इरादा है। घर पर करने को हजारों काम पड़े हैं।"

एक दूसरे ने कहा, "वह सब होगा नहीं। पता है कि यह छुट्टी क्यों दी जा रही है ? घर के दर्शन के लिए। सभी को देखकर चले आना है। अब आगे माँ और बेटी को देख पाना किस्मत पर निर्भर है। हमें लड़ाई के मैदान भेजना चाहते हैं।"

कोई कुछ नहीं बोला। वह माहौल अचानक उदासी में बदल गया। लम्बी साँस भरकर मैसूर वाले ने कहा, "मेरी बेटी को एक हजार रुपया मिल जाएगा, ख़ैर।"

तिरुनेलवेली वाला बोला, "एक हजार रुपये के वास्ते मेरी माँ को अन्तिम दिनों सेवा-शुश्रूषा के लिए कोई जरूर मिल जाएगा।"

लम्बी साँसों से कलुषित उस रात किसी से सोया नहीं गया। जो कुछ

नही मिली। 'कब आया?' का सवाल सुनने के लिए आतुर हो वह केरल के नगरों मे भटकता रहा। किसी का जाना-पहचाना होने के लिए उसने खूब कोशिश की। पांच, छह, सात—इस प्रकार दिन-पर-दिन निकलते गये। जो भी मिला उससे बातें की। कई लोगों को 'भाई' कहकर सम्बोधित किया। सामने पडने-वाले हर-किसी से वह मुस्कराते हुए मिला। किसी को नही पहचान पाया वह और किसी उसे भी नही पहचाना। उत्तर मे कोषिकोड से दक्षिण मे नागरकोइल तक वह चिड़िया से होड करके भटकता रहा। यों अट्ठाईस दिन बीत गये। अब सिर्फ दो दिन बाकी रह गये थे। अब भी जहाँ भी वह भोजन करता, पैसे के लिए हाथ आगे बढ आता। कोई नाम लेकर पुकारता नही। उसका वह नाम आखिर किस लिए था?

× × ×

पागल-जैसे नगरो से बहुत दूर शान्त और एकान्त गाँव! टीले के ढलान पर खेत के किनारे हरे-भरे बाग मे एक छोटा-सा घर। उसके बरामदे मे एक भुईंदिये[1] के आगे बैठ प्रशान्त मन से भोजन कर रहा था वह फ़ौजी। काफी देर हो गयी थी उसे भोजन के लिए बैठे। एक बुढिया चावल और सब्जी पास रख थोडा-थोडा परोस कर बातें करती हुई उसे खिला रही थी।

वह उसे 'माँ' कहकर पुकारता और बुढिया उसे 'बेटा' कहती। वे बातें कर रहे थे घरेलू मामलो के बारे मे।

वह माँ कह रही थी, "बेटा मेरे, छह जने का निबाह होना है। पहनना, नहाना-धोना, खाना—सब होना है। यह इतनी-सी जमीन है। दो साल पहले पाँच मन कप्पा[2] मिला था।...बेटा, थोड़ा दही का झोल परोसूं? उसके बाद दही।" बुढिया ने दही का थोडा-सा झोल उँडेल दिया।

"नही माँ, अब नही चाहिए। आज मैं सेर-भर चावल खा गया! है न माँ!"

"यही बला है। पाव सेर चावल ही आज पका है यहाँ!"

बुढिया फिर बातें करने लगी।

रामन नायर ने पूछा, "तो 'माँ' के कोई बेटा नही!"

लम्बी साँस भरकर बुढिया बोली, "दिया था भगवान् ने एक। और ले भी गया वही। होता तो आज तेईस साल का होता। मेरी नाणी से दो साल छोटा था वह। वह अब पच्चीस की है।"

---

१. धरती पर रखा जाने वाला पीतल का बना खास किस्म का एक दुतल्ला दिया।

२. एक मूकाड जो खाया जाता है।

वहाँ की दुपहर की धूप भी मुरझाकर थकाती नहीं है। मलयाली की हँसी मे ही हार्दिकता होती है। वहाँ की भाषा प्रेम की अभिव्यक्ति ही होती है।

जन्मभूमि जननी के समान उसे पुकार रही थी। केरल के नारियलों की सुखमय शीतल छाँह में लेटकर सोना है। गली-मेंड़ों से यों ही घूमते-घामते रहना है। केरल का एक मुट्ठी अन्न और खाना है।

सवेरे औरों से पहले वह उठा। दूसरे जब तक जाग उठे तब तक वह यात्रा के लिए तैयार हो चुका था।

× × ×

दो-चार दिनों से आलप्पुषा शहर की गलियों-चौराहों पर एक फ़ौजी दिखाई दे रहा था। शहर के हर कोने में दिन में दो-तीन बार वह दिखाई पड़ जाता। रात में भी चलता रहता। उस दिन रात को नौका-घाट पर तैनात पुलिस वाले से सिर्फ़ एक बूढ़े मुसलमान कुली के पास उसके बारे में कुछ कहने को था। वह कहाँ ठहरा है? कहाँ का है? किसी को कोई पता नहीं।

एक दिन वह दिखा नहीं। अगले दिन सवेरे कोल्लम में आनन्दवल्लीश्वर मन्दिर के पास एक घर के बन्द फाटक के बाहर वह खड़ा दिख गया। हाथ में लोहे का एक बक्स लिये हुए था। सड़क से जाने वाले एक छोकरे ने बिना पूछे उससे कहा कि उस घर में कोई नहीं रहता है।

मन्दिर से एक सज्जन बाहर आये। वह उनके पीछे हो लिये। थोड़ी दूर जाकर वे एक फाटक की ओर मुड़ गये।

"मैं रामन हूँ।"

शब्द सुनते ही उन्होंने मुड़कर देखा। हाथ में बक्स लिये पत्थर की बुत जैसा वह फ़ौजी खड़ा था।

"रामन? कौन-सा रामन?" उस सज्जन ने पूछा।

कुछ भी बोलने में असमर्थ वह थोड़ी देर वैसा ही वहाँ खड़ा रहा और फिर आगे बढ़ गया। दूर सड़क के मोड़ पर उसके अप्रत्यक्ष होने तक वे उसे देखते रहे। 'रामन' नामधारी किसी को वे याद नहीं कर पाये।

चिन्नक्कड़ा के एक होटल के फाटक के पल्ले पर कटार की नोक से 'रामन' शब्द लिखा हुआ था। फ़ौजी ने होटल के मालिक ब्राह्मण से कहा। "वह मेरा खुदा हुआ है।"

मालिक ब्राह्मण कुछ नहीं बोले।

'परमु' नाम के किसी बड़े भाई की खोज में वह तिरुवनन्तपुरम् में भटकता रहा, मगर उसे वह भाई नहीं मिला।

सत्रह दिन यों बीत गये। कहीं भी उसे जान-पहचान की एक मुस्कराहट भी

उस दिन दोपहर को उस घर में एक साधारण-से विवाह की रस्म अदा की गयी। पच्चीस साल की आयु में नाणी को पति प्राप्त हुआ था।

वह शाम बहुत ही मनोहर थी। कटाई के बाद का सूना खेत अस्त होनेवाले सूरज की कान्ति में कनक-धूसर दिख रहा था। खेत की सांस-जैसी मन्द हवा चल रही थी। बैलों को हांकते और कन्धे पर हल लिये हुए एक थका-मांदा किसान पास से निकल गया। उसने कुशल-समाचार के तौर पर पूछा, "यहां खड़े हैं!"

"हां, यों ही।" रामन नायर ने जवाब दिया।

उसके नाते-रिश्ते हो गये।

"आज क्यों जा रहे हैं?"

सवाल सुनकर उसने मुड़कर देखा। वह पीछे खड़ी थी। उसे रामन नायर ने एक बार ध्यान से देखा। उसका सिर झुक गया।

"मुझे जाना है। मैं…मैं…विधाता की कृपा हुई तो फिर मिलेंगे। तू क्वांरी जैसी ही रह।"

रामन नायर का गला भर आया।

"रहूंगी। यदि कल—"

रामन नायर ने इनकार की मुद्रा में सिर हिलाया।

पहर-एक बीते पूर्णिमा का चांद उदित हो ऊपर चढ़ आया। खेत की मेड़ से हाथ में बक्स लिये चलते आकार को वह देखती खड़ी रही। झरना अपना जीवन-गीत गाता रहा।

× × ×

उस घर को एक फौजी का 'फैमिली एलॉटमेंट' मिलने लगा—महीने के चालीस रुपये। उसने पीतल-कांसे के तीन-चार बर्तन, दो-तीन खाट वगैरह खरीद लिये। उन पर अपना नाम भी खुदवाया। घर की मरम्मत करा ली। बाड़े के चारों ओर सीव-बाड़ बनवायी। बाड़ा भर केले के पौधे लगाये। वह आज गांव की जानी-मानी महिला है। उसकी मां भी उसकी बात मानती है।

हर दिन मन्दिर जाकर वह जाने क्या-क्या प्रार्थना करती रहती। घर में हमेशा एक आदमी का भोजन परोस कर रखा रहता। रात को कोई आवाज़ सुनाई पड़ती तो मां पुकार कर पूछती, "कौन?" सुनकर वह हड़बड़ा कर उठ खड़ी होती। सहेलियां पूछतीं, "तेरा आदमी कब आएगा री?"

वह कोई जवाब नहीं दे पाती।

एक दिन डाकिये ने एक बड़ा लिफ़ाफ़ा ला दिया। उसमें फ़ौजी की तस्वीर थी। उस दिन से उस घर की मिट्टी की दीवार को वह तस्वीर अलंकृत करती रहती है।

बुढ़िया ने कुछ और चावल परोस दिया। उसने मना किया, मगर बुढ़िया नही मानी।

"तू मेरा हाथ छोड दे, बेटा !"

"बस, बस माँ ! अब और नही खाया जाता।"

ऐसा भोजन जीवन मे उसने पहली बार किया था। आज तक किसी ने यह नहीसोचा था कि उसने पर्याप्त खाया भी है या नही।

रात को उस छोटे घर के आँगन मे वह बेचैन हो टहलता रहा। ओणम की भी पहुँच के परे[1] के इस गाँव से उसके जीवन का यह अनोखा सम्बन्ध जुड गया। उसे लगा कि अब उसका दिल शान्तिपूर्वक धडक रहा है। विचार स्पष्ट भी हो गये हैं। उसे माँ मिल गयी।

"माँ ! माँ !! एक कौर चावल और !" "माँ[2] पुलिश्शेरी[3] उँडेल दूँ !"

उस बुढ़िया की मुस्कान कभी भुलाई नही जा सकती। उसने चाहा कि वह भरपेट खाए। उसके भरपेट न खाने पर रात को उसकी नीद हराम तो नही होती ! एक आदमी का भोजन परोसा रख कर दीया बुझाये बिना इन्तजार करने की कोई जरूरत उसे नही है, क्योंकि उसे जन्म देने की वह भारी पीडा उसने नही झेली थी।

नही, उसका इन्तजार करनेवाला कोई नहीं। सागर पार लडाई के मैदान में यह शरीर चूर-चूर होकर बिखर जाए तो किसी की कोई हानि नही होगी। ऐसा भी कोई नहीं जो प्रार्थना करे कि वैसा कभी घटित न हो।

अगले सवेरे उसने बुढ़िया से कहा, "माँ, मैं एक बात कहूँ !"

"कहो, बेटा !"

"मैं मैं नायर हूँ, माँ !"

"बेटा, तूने यह कल कहा था।"

"मेरा घर-बार नहीं है, कोई नही है।"

"यह तू ने नाश्ते के वक्त कहा था।"

"मेरा कोई नही है, माँ !" वह फूट-फूट कर रो उठा। यह देख बुढ़िया हैरान रह गयी।

× × ×

१. बिलकुल अपरिष्कृत। ओणम केरल का राष्ट्रीय त्योहार है।

२. मलयालम भाषा मे सगे-सम्बन्धियो की बातचीत में अक्सर 'मैं' के बदले नातासूचक शब्द का प्रयोग होता है। इसलिए क्रिया उत्तम पुरुष मे रखी गयी है।

३. दही का झोल।

वाह रे चरित्रवान् !

एक अभिनेत्री की तस्वीर हाथ मे लेकर माधव उसे ध्यान से देख रहा था। कितनी मधुर है उसकी हँसी ! माधव की आँखें उस तस्वीर मे से किसी प्यासे के समान कुछ पी रही थी। अभी जी नही भरा। भरेगा भी नही। मानो वह तस्वीर आनन्दानुभूति का न सूखनेवाला स्रोत हो। वह उसे टेढी नजर से देखकर मधु-मुस्कान छोड रही थी। वैसे देखते हुए उसने तस्वीर को चूम लिया।

मेज पर कागज के नीचे एक दूसरी तस्वीर छिपी हुई थी। एक अधनगी औरत। लगा कि उसके दूसरी औरत को चूमने से वह जल उठी थी। फौरन माधव ने तस्वीर नीचे रख दी। फिर हाथ में ली। उसके उन्नत उरोजो का बढ़ना अभी जारी था। नितम्ब को और भारी होना था। आवेश से उसने उसे देखा। अगले ही क्षण उसने अपने मे घोये वह तस्वीर दबायी और पोछी। वह सिर्फ एक तस्वीर थी। उसने जो थोडा-सा वस्त्र पहना था, वह भी छिपा नही। उसका चेहरा लज्जा से लाल नही हुआ।

उस मूर्खता मे उसका आवेश ठण्डा हो चला। मेज पर पड़े नग्न चित्रों को उसने एक-एक करके देखा। सब वैसे ही लगे, जैसे कल थे। पूर्ण सन्तुष्टि देने मे असमर्थ। इन चित्रों की मालकिनें कहाँ-कहाँ की होंगी ? इनके अलावा अपनी परिचय-सीमा मे और कितनी औरतें हैं ? लक्ष्मी दीदी, भगवती बुआ आदि···ग्यारह साल से कम कोई नही है। पद्मावती—औरत होने के बावजूद, वह छोटी बहिन है।

लगा कि कोई कमरे के बाहर है। उसने सारी तस्वीरें लेकर बक्से मे रख दी। उसमे और भी अनेक पड़ी हुई हैं। अलावा इसके औरतों के पहिनने की बॉडीज और एक रूमाल था। पता नही, कहाँ से मिला ! उसने बॉडीज लेकर उसे चूम लिया। किसी औरत

तीन महीने बाद माहवार सौ रुपये का मनिआॅर्डर उसके नाम आने लगा। छह महीने के बाद रकम में और भी वृद्धि हुई।

एक दिन स्थानीय पुलिस चौकी से उसे लोहे के तीन बड़े बक्स ले जाने की इत्तिला मिली। उनमें ऊँचे ओहदे के फ़ौजी अफसर के वर्दी-कपड़े भरे थे। एक बक्से में विवाह के वक़्त उसको पहनायी गयी फूलमाला थी। वह मुरझा कर सूख गयी थी।

नाणी अकारण चौंक उठी।

एक हफ़्ते के बाद, उसे दस हज़ार रुपये का एक चेक मिला। उसके बाद फिर कभी माहवार का मनिआॅर्डर नहीं आया।

"ऐसे कितने दिन बिताने पड़ेंगे ? एक प्रेमिका को किसी प्रकार प्राप्त करना चाहिए। हमेशा तैयार खड़ी प्रेमिका। सोये बिना मेरा इंतजार करने वाली। काम से उसके कन्चुक टूट जायें।" उसने सोचा : "प्रेमिका लजाती होगी क्या ? वह मना करेगी ? रोकेगी ? उसे मैं आनन्द पुलकित करके पागल बना दूंगा।"

उसने रवि के घर जाने का निश्चय किया। रवि उसका जिगरी दोस्त है। वह जानता है कि इस समय वह घर पर नही होगा। उसे पूछने जायेगा कि रवि है कि नही। तब अगर जानु न आएगी तो ! नही, वही आएगी। कहेगी कि भैया बाहर गया है। फिर ? वही बातचीत बन्द नही होनी चाहिए। मजेदार बातें करनी होगी। वैसे हँसी-मजाक मे थोड़ा समय बीत जाएगा। फिर एक दृष्टि उस पर। वह शर्मिन्दा हो उठेगी। यों वह प्रेमिका हो गयी। माधव ने कल्पना की।

पर रवि के घर के पास आया तो, उसे न वहाँ जाने का और न ही उस ओर देखने का साहस हुआ। कोई अन्दर से बुलाने लगा तो···? वह जल्दी वहाँ से आगे बढ़ गया।

माधव पगडण्डियों से होकर चलने लगा। कई औरतों को देखा। बूढ़ियाँ—उन्होंने अपना समय कैसे बिताया होगा ? क्या वे सुन्दर थी ? आज भी पुरुषों को आनन्द दिला सकती हैं ? छोटी बालिकाएँ—वे बड़ी हो रही हैं। बड़ी सम्पत्ति उनकी भी है। सुना है कि इन मुहल्लो में, अगर पैसा हो तो, नये-नये अनुभव प्राप्त किये जा सकते हैं। पर, पता नही कैसे ?

साँझ हो आयी तो माधव मन मसोसकर घर लौट आया। कमरे की बत्ती जलायी। उन सभी औरतो को उसने एक-एक करके याद किया जिन्हे वह आज देख आया था। कमबख्त ! क्यों याद करूँ ? बक्से मे पडी नगी तस्वीरों से ही मैं अपना दिल बहला लूँगा।

माधव अपने कमरे मे बेचैन होकर टहलने लगा। उसने खुली खिड़की से पद्मावती को देखा, जो नहाने के बाद भीगे कपडो मे जा रही थी। वह भी औरत है।

लगा कि उसकी तस्वीर अपने मन मे सुदृढ़ हो गयी है। वह गायब नही होती। क्या ऐसी औरत को मैंने पहले कभी देखा नहीं ? कमबख्त !

समय कुछ और बीत गया। उसकी बेचैनी बढ़ चली। उसे भुलाने की कोशिश उसने की, पर भुला नहीं पाता। क्या मुसीबत है ?

"भैया, थोड़ा यह गणित सिखा दो।" खुले दरवाजे से पद्मावती अन्दर आयी। उसने उसे ध्यान से देखा। उस दृष्टि में उसका औरत भाव थोड़ा-सा

ने धोकर सुखाने डाला होगा, और इसने उसे चुरा लिया होगा। अच्छे लड़के का बक्सा किसी ने देखा नहीं।

माधव ने धोती बदलकर बाल सँवारे। पाऊडर लगाया। हाय! सुन्दर है! आईने के सामने जाकर देखा, सन्तुष्ट हुआ। वह 'मजा' किस प्रकार लूटना चाहिए? किसी प्रेमिका को ढूँढ निकालना है। कम-से-कम एक परिचित औरत हो। वह बाहर आया।

पिताजी का एक बूढ़ा साथी रास्ते में सामने से आ रहा था। उसने प्यार से पूछा :

"कहाँ जा रहा है, बेटा?"

माधव ने विनय से कहा : "टहलने। और आप?"

"मैं भी उसी के लिए जा रहा हूँ।"

बूढ़ा चला गया। माधव जानता है कि उस बूढ़े के तीन बेटियाँ हैं। उगड़ी और मोटी। वह उनकी शक्ल याद करने लगा।

पास के किसी घर से एक मित्र ने पूछा, "कहाँ जा रहा है? टहलने?"

"हाँ" माधव ने जवाब दिया।

उस दोस्त की अभी-अभी शादी हुई थी। सुन्दर पत्नी—दुबली-पतली देह। माधव ने सोचा : "उन दोनों के सोने का कमरा कैसा होगा! एक भावभीना दृश्य! औरत उस दृश्य की गति बढ़ाती रहेगी। वह उसकी जरूरत है। उसे कुछ चीजें चाहिए। एक चुम्बन···· क्या वे जलती बत्ती को बुझा देते होंगे?"

आगे कोई जवान लड़की मटक-मटक कर चली जा रही थी। माधव के पैरों की गति बढ़ गयी। उसके साथ चलना है। उससे परिचित होना है, बोलना है। शायद उसका हृदय भी किसी पुरुष के विकारों को स्वीकार करने के लिए तैयार हो! उसे भी तो जरूरत होगी। उसके पास पहुँचा ही था कि माधव का सिर दूसरी तरफ मुड़ गया। वह एक दम उसके आगे चलने लगा।

शायद अपने लिए वह 'मजा' नहीं बताये। औरत को एक बड़ी संपत्ति प्राप्त है। उस पर उसे गर्व है। वह चाहती है कि पुरुष उसे देखें। वह उसका हक है। पुरुष की ओर उसका कटाक्ष जाता भी इसलिए है कि वह जाने कि अपना हक माना जा रहा है कि नहीं। जब कोई प्यार से उसे देखता तो उसके मुख पर कृतकृत्यता की मुस्कान खिल उठती।

"मैंने उसे पारकर भी उसकी तरफ देखा नहीं, उसकी निन्दा की। उसने जो दिया, उसे अस्वीकार कर दिया। उसकी साड़ी की आवाज पीछे से सुनाई पड़ती थी। पर पीछे मुड़कर देखने का डर था। बहुत कोशिश करके एक बार देखा। उसने साड़ी का अंचल भी ठीक नहीं किया। शायद वह मुझे बच्चा समझती है!"

अनाथ की मौत

मक्कार मर गया। मरने के लिए रेंग-रेंग कर वह अस्पताल तक गया था। उस सफर में वह शहर के कई प्रमुख घरों में गया। मरने के लिए नहीं, थोड़ा चावल-पानी के लिए, थोड़े-से कपड़ों के लिए। बारिश थम जाने तक बैठने के लिए। सभी ओर से वह भगा दिया गया। भगा देनेवालों को दोष नहीं दिया जा सकता। घर के सामने एक अनाथ प्रेत का होना—कैसी बला है!

मक्कार को शहर में सब जानते थे। पाँच वर्ष का था जब वह वहाँ आया था। तभी से वह भीख माँगता रहा है। थोड़ा-सा भात और कुछेक कपड़े। पर मक्कार हारा हुआ भिखारी है। आज तक उसे किसी एक व्यक्ति की भी सहानुभूति नहीं मिली। अगर कहीं कोई चिथड़ा या मुट्ठी भर चावल मिला होगा, तो यह सोचकर नहीं दिया गया होगा कि 'बेचारे को कुछ मिल जाय' पर इसलिए कि बला टले। एक बीभत्स दृश्य से बचने, किसी बदबूदार चीज़ को हटाने या ऐसे ही किसी कारण से। पर मक्कार जिया, लोगों पर आक्रमण करके जिया, लोगों से कर वसूल करके जिया। जब हबीब सेठ अपने बंगले की छत पर अपनी चौथी युवती पत्नी को छाती से लगाकर उसके ओठों पर प्रणय की मुद्रा छोड़ने वाले थे कि तभी बाहर मक्कार की गरजन सुनाई देती। कैसी बला है! कुछ मिले बिना तो वह जानेवाला है नहीं, अपनी आनन्दानुभूति में तत्काल के लिए बाधा पड़ जाती, लेकिन फिर भी सेठ बीवी को नीचे भेजते—उसे कुछ देकर टालने के लिए। उद्यान में फूलों की खुशबू को निगलती हुए जब भी वह परिचित बदबू फैल जाती तो मालिक लोग अपनी जेबों को टटोलते। घरों पर बच्चे पेट भर खाने के बावजूद खाना माँगते तो माताएँ मक्कार का नाम लेकर उन्हें डराती। शुभ कार्य के लिए कोई तैयार होकर निकलता तो सामने सबसे पहले मक्कार पर ही नजर पड़ती।

सकुचा गया। क्या उस हृदय मे भी ज्वार हो उठा ? क्या वह मुस्करा रही है !

"जा !" माधव जोर से चिल्लाया। उसकी प्रतिध्वनि मे वह डर गयी। वे एक-दूसरे को देखते खड़े रहे। माधव का हाथ आगे बढ़ गया :

"तू जाती है कि नही ?"

वह भाग गयी।

माधव ने दीवार पर लटके आईने मे अपना चेहरा और आत्मा की प्रतिध्वनि देखी। कैसी विकृत है ? जानवर ! वाह रे चरित्रवान् !

से युक्त मक्कार को गड्ढे मे रखा गया । मुख के आवरण को हटाया गया । १४०० वर्ष पहले जहाँ से विश्वबन्धुत्व का चिर संदेश निकला था, उस ओर मक्कार का सिर रखा गया । जिन्दा मानवो के हृदय की गहराई में पहुँचने के लिए निकला सदेश आज ठण्डा होकर लाश के गड्ढे मे एक रस्म बन जाते देख प्रवाचक फूट-फूटकर रोते होंगे । शायद !

एक लकडी से गड्ढा भर दिया गया तो रहीम साहब और हबीब सेठ—सबो ने एक-एक मुट्ठी मिट्टी डाली । बन्धुत्व का एक और प्रतीक !

वैसे मक्कार ने खाना खाते और चिथड़े पहनते पैंतीस साल बिता दिये थे। इसी बीच दो-तीन बार दो बड़ी धोतियाँ ओढ़े भी वह दिखाई पड़ा था। तब उससे सड़ी-गली लाश की बदबू निकल रही थी। उन दिनों पास की मसजिद के श्मशान से किसी की लाश को उठाने की बात सुन पड़ रही थी।

अचानक मक्कार को पेचिश हो गयी। उस दिन वह बहुत थक गया था। घर-द्वार को छोड़िए, गली के किनारे भी उसे लेटने नहीं दिया था। पैदल चलते, बैठते और रेंगते किसी प्रकार वह अस्पताल जा पहुँचा था। रेंगते-रेंगते कमर पर का चिथड़ा कहीं खो गया था। कुछ दिन पहले किसी लाश को ओढ़े कपड़े का टुकड़ा ही तो था वह।

मक्कार को मोर्चरी ले जाया गया तो अस्पताल से मिला उसका कपड़ा भंगी ने चुरा लिया और वह फिर वैसा ही नंगा हो गया था।

उस दिन अस्पताल में चार मौतें हुई थीं। बाकी तीनों लाशों को श्मशान ले जाया गया, पर मक्कार को वहीं रखा गया। इतना सड़ना-गलना और बदबू निकलना काफी नहीं था क्या? मरने के बाद भी?

दो-पहर बाद, शहर के कुछ मुसलमान एक सन्दूक लेकर आये। मक्कार को ले जाने आये थे। उसका शव-संस्कार करने आये थे वे।

जिन्दा मक्कार को कुछ देने को हिचकते थे। जिन्दा मक्कार दूसरों से माँगता रहा। अब मुर्दा मक्कार को देने को लोग तैयार थे, शायद यह सोचकर कि एक बला टल जाये।

पास के एक मुसलमान घर में वे मक्कार को ले गये। सुगन्धित गरम पानी, खुशबूदार साबुन से उसे शहर के प्रमुख मोदीन ने नहलाया। बेहतर कुर्ता-धोती पहनाये गये। बढ़िया कफन उस पर डाला गया। इत्र और गुलाब-जल में नहा-कर, सफेद मुलायम कपड़ा पहने भिखारी मक्कार लेटा हुआ था।

जिन्दा मक्कार की आत्मा के लिए किसी भी खतीब ने प्रयत्न नहीं किया। मुर्दा मक्कार के बन्द कानों पर शहर के प्रमुख खतीब ने 'यासीन' सुनाया।

सजे हुए सन्दूक में उसकी लाश मसजिद के पासवाले श्मशान ले जायी गयी। उस शवयात्रा में शहर के सभी प्रमुख 'दिकीर' जप रहे थे। सारे दुःखों से मोचित और शाश्वत समाधान पा गये मक्कार को बंगलों की खिड़कियों से कितनी ही नारियों न देखा। उनके विद्रूप अधरों ने 'ला इलाहि इल्लिल्ला' का विशुद्ध मन्त्रोच्चारण किया।

यूँ मृत मक्कार इस्लाम की आम-सम्पत्ति हो गया। जीवित मक्कार को किसी ने नहीं अपनाया—शायद उसमें प्राण बस रहे थे—इसी दोष से। तो सभी मुस्लिम-भिखारी उस दोष से बचने की कोशिश क्यों नहीं करते? उनके लिए उत्तराधि-कारी होंगे····मसजिद में मकबरा तैयार हो गया था। इक्कीस फुट लम्बे कफन

कूटा करती।

भार्गवी ने पप्पु नायर की अच्छी सेवा की। वह काजो से दानें चुनकर उसे खिलाती और ख़ुद बची हुई मांड पीकर पेट भर लेती। बड़ी आज्ञा-कारिणी थी वह। कम बोलती। हाँ, दु:ख-कष्ट के अनुभवों ने उसके चेहरे की खुशी हमेशा के लिए उड़ा दी थी। पिचके गाल, झड़े बाल! सिर्फ़ बीस साल की उम्र में वह तीस की लग रही थी। उसका चेहरा हमेशा उदास रहा करता। कभी दिल खोलकर नहीं हँस पाई थी। कभी-कभी उसके काले होंठो पर व्यग्य की हँसी नज़र आ जाती, खासकर खुशहाल सहेलियो को देखते समय।

वह अधिकतर एक बड़ा गमछा ही पहना करती। बदलने के लिए दूसरा कपड़ा भी तो नहीं था उसके पास। उस अर्धनग्नता में वह लज्जित होकर छिपती नहीं थी।

ऐसे उदास और मुरझाये माहौल में सरल मन का, बातूनी, पप्पु नायर एक दिन आ पहुँचा। भार्गवी उससे भी बहुत कम बोलती थी।

पप्पू नायर कहता : "भार्गवी के पेट में बच्चा बढ़ रहा है। वह बड़ा होकर हर किसी को रामायण वाचन कर सुनाएगा।"

वह सिर्फ़ उस बात का जवाब देती, "मुझे तो बस, एक बच्ची चाहिए।"

भार्गवी ने बच्चे को जन्म दिया। नायर की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वह उस कमरे से बाहर नहीं निकलता। वहाँ आती सभी औरतों से वह कहता, "मेरी इच्छा पूरी हो गई। भार्गवी तो बच्ची चाहती थी।"

वह बच्चे को हमेशा अपनी गोदी में लिटाये दुलारते रहना चाहता था। उससे पूछता, "अरे तू बड़ा होकर बाप को रामायण पढ़कर सुनायेगा न?"

उस अन्धे का चेहरा खुशी से खिल उठा था। बारम्बार कहता, "भार्गवी, क्या तू उसे चुम्मी नहीं देगी?"

भार्गवी कहती, "क्षणभर भी तुम्हारी जीभ मुँह के भीतर चुपचाप पड़ी नहीं रह सकती।"

"अरी, तेरे भाग्य के दिन आ गये। मुझे और क्या चाहिए? यह बड़ा होकर मुझे काशी-रामेश्वर ले जायेगा। है न बबुआ?"

पप्पू नायर ने बच्चे का बदन हाथ से टटोलते हुए गालो को चूम लिया। उसने मन-ही-मन बच्चे की जन्मपत्री बनाना शुरू कर दी।

"अरे, इसकी जवानी में शुक्रदशा होगी। यह खुशकिस्मत है। भार्गवी, इसका नाम गोपिकारमणन् रखना है।"

उसने भार्गवी से मलयालम की एक प्रसिद्ध लोरी सीखने का आग्रह किया।

अन्धे की धन्यता

पप्पु नायर ने भार्गवी को पत्नी के रूप में स्वीकार किया था। वह जन्म से अन्धा था और वह गाँव में बदचलन मानी जाती थी। वह उस बदनाम घर पर जाता था तो किसी को शका नही होती थी। एक तो यह अन्धा था। दूसरे भार्गवी की माँ को पुराण-कथाएँ सुनने का शौक था। पप्पु नायर जितनी भी कहानियाँ जानता था, उसने सबकी सब उसे सुना दी। पप्पु की माँ ने बेटे को उस घर पर जाने से दो बार रोका था। आख़िर भार्गवी के गर्भ रह गया।

माँ ने पप्पु नायर को साफ बता दिया कि वह उसे अपने घर में दाखिल होने नही देगी। पप्पु नायर का जवाब था : "मेरा छोटा भाई रोज-रोज मेरा हाथ थोड़े ही बटाएगा। मेरी सेवा के लिए आख़िर एक व्यक्ति तो चाहिए ही।

माँ ने पूछा, "तू उसे क्या दे पाएगा?"

"कुछ देने की जरूरत नही। वह किसी घर पर चौका-बर्तन करके या धान कूटकर जी लेगी।"

"और तू?"

"मेरी भी देखभाल करेगी वह।"

"उसने तीन दफे गर्भ गिराया है।"

"दुनिया में ऐसी कोई औरत नहीं होती।"

अपने घर के द्वार पप्पु नायर को हमेशा के लिए बन्द हो गये।

भार्गवी एक ब्राह्मण-गृह में बर्तन माँजने लगी थी। वहाँ से उसे रोज दोनों जून का खाना और महीने में एक परा[2] धान मिल जाया करता। इसके अलावा वह एकाध घर पर नियमित रूप से धान भी

१. कुलटन्टे पातिव्रत्यम्।
२. दस सेर के करीब।

पप्पु नायर ने भार्गवी को समझाया।

आषाढ़ का अकाल ! घर में तीन दिन से चावल के दर्शन नहीं हुए। एक रोज़ सेम का पत्ता पकाकर खा लिया। भूसी पर दूसरा दिन काट लिया। तीसरे दिन पड़ोसी केशवन नायर ने उसे चार पैसे दिये। उससे भार्गवी ने चावल खरीदकर काजी बनायी। माँ, बेटी और बेटे ने पी ली। पप्पु नायर तो मुहल्ले के राघवन के मुँह से रामायण सुनने मे लीन था। उसे रसोईघर की चहल-पहल का कुछ पता ही नहीं लगा।

वह भारी मन से कुचेलवृत्तम् काव्य गुनगुना रहा था। आधी रात ढलने पर भी जठराग्नि के भीषण ताप के कारण उसे नींद नहीं आ रही थी। पड़ोसियों ने उसका ताल बजाकर गाना सुना। भार्गवी झल्ला उठी, "यह कैसी बला है ?"

× × ×

फिर से भार्गवी के गर्भ रह गया। पप्पु नायर भार्गवी से कहता, "इस बार बच्ची होगी।"

बड़ा बच्चा बतियाने लगा था। वह 'माँ माँ' पुकारता। 'नानी' पुकारता। मगर उसके मुँह से 'अच्छा' (बापू) शब्द कभी न निकलता।

"तू 'अच्छा' क्यों नहीं पुकारता रे ?" मगर 'च्छ' ध्वनि का उच्चारण मुश्किल था।

गर्भावस्था मे भार्गवी को कई बीमारियों ने घर रखा था।

पप्पु नायर समझाता रहा कि ये मुसीबतें खतम हो जाएँगी। रामन अपनी माँ के नज़दीक से नहीं हटता था। वह पप्पु नायर के पास कभी नहीं जाता। पप्पु नायर उससे कहता, "माँ के पेट मे छोटी मुन्नी है, उस पेट पर चुम्मी दे।"

भार्गवी के बच्ची हुई। पहले की तरह पप्पु नायर ने ज्योतिष्क गणना करके कहा, "इस बच्ची को चौदह वर्ष की अवस्था मे मांगल्ययोग है।"

पप्पु नायर ने पड़ोसिन से पूछा, "मेरी मुन्नी की सूरत माँ से मिलती है न ?"

वह औरत मन-ही-मन हँस पड़ी। हँसी चेहरे पर छा गयी थी।

उसने जवाब दिया, "ऐसा ही लगता है।"

औरतों ने उस शिशु के पितृत्व का भी सही निर्णय कर दिया था।

अब बच्चे दो हो गये। गरीबी भी बढ़ गयी। भार्गवी की सेहत बहुत गिर गयी। वह चौका-बर्तन करने भी जा नहीं सकी।

पप्पु नायर भार्गवी को ढाढ़स बँधाता कि उनकी गरीबी दूर होगी। भार्गवी ने उस भीषण दुःख से मुक्ति पाने के लिए आत्महत्या करनी चाही। पप्पु नायर ने दलील पेश की कि बच्चे अनाथ हो जाएँगे और आत्महत्या मूर्खता है। भार्गवी की आँखो मे आँसू की बूँद तक नहीं टपकी। बड़े कठिन प्रसंगों पर वह दाँत पीस लेती। गड्ढे मे गिरी उसकी आँखें क्षण भर के लिए अलौकिक तेज से

उस औरत ने बच्चे का नामकरण किया—'रामन'। उसने पूछा, "तुमने बच्चे का नाम गोपिकारमणन् क्यों नही रखा?"

भार्गवी ने जवाब दिया, "और क्या? भीख माँगनेवाले बच्चे को—"

"अरी, यों मत कह। इसकी जन्मपत्री में केसरियोग है।"

भार्गवी ने वह लोरी भी नही सीखी।

बालक पप्पू नायर की गोदी में पड़ा-पड़ा बहुत रोने लगता तो वह घबराकर भार्गवी को आवाज देता। वह दाँत पीसती चिल्ला उठती, "क्या इसे गला फाड़ना ही आता है?" और बच्चे को दो थप्पड़ जमा देती। पप्पु नायर डर जाता।

भार्गवी काम पर जाती तो शाम को जल्दी ही लौट आती। यहाँ पप्पु बेचैन हो उठता, बड़बड़ाता रहता कि बच्चे का गला सूख रहा है।

यह दृश्य देख दर्शकों का दिल पसीज उठता।

"मेरा मुन्ना भाग्यवान है। उसकी दाईं छाती के नीचे एक तिल है, कमल-सा। भगवान का श्रीवत्स है।"

पड़ोस की औरतों से वह पूछता, "क्या यह बच्चा मुझ पर पड़ा है?"

औरतो की आँखें आँसुओं से भीग जाती।

वह अँधेरे में तिल देखता और समझता कि बच्चे की सूरत उसकी जैसी है। एक स्त्री ने एक दिन उससे पूछा, "क्या तुम देख लेते हो?"

"हाँ, मैं अपने बच्चे को देख सकता हूँ।"

यह बच्चे को देखता भी था। उसे चूमते हुए वह कहता, "अरे शैतान! तेरी यह मोहिनी हँसी!"

शायद वह उस मौन मुस्कान को देख पाता होगा।

गाँव की स्त्रियाँ आपस में कहा करती, "हाय! पिछले जनम में पाप किया होगा। वह बच्चा उस पर पड़ा है?"

रामन के अन्नप्राशन का दिन आया। पप्पु नायर को अपने हाथ से शिशु को अन्न का पहला कौर देने की इच्छा हुई। मगर भार्गवी ने अस्वीकार कर दिया। उसने अपनी माँ से कहा, "यह बड़ा पेटू है।" इस पर पप्पु नायर बोला, "यह बात है तो किसी और से अन्न दिला दो। बच्चे को पेटू नही होना चाहिए। मुझे क्या पता कि मैं बहुत खाता हूँ।"

पप्पु नायर उस मजाक पर दिल खोलकर हँसा भी।

बच्चा बड़ा होने लगा। इधर उस परिवार की आर्थिक दशा गिरती चली गयी। ब्राह्मण-परिवार में भार्गवी को किसी चीज चुराने के अपराध में नौकरी से अलग कर दिया था।

"बच्चे को भूखा न रखना। मेरा एक जून का खाना उसे दे दिया कर।"

कभी वे उसे भी कुछ खाना दे देते। मगर वह था कि उनसे कभी खाना नहीं माँगता था।

रामन स्कूल नहीं जाता था। उसकी माँ ने स्पष्ट कह दिया कि स्कूल जाने की जरूरत नहीं। यह खर्च वह सँभाल नहीं सकती। नायर ने मान लिया था।

उसने कहा, "परन्तु बच्चे को लिखना-पढ़ना तो सिखाना ही चाहिए। अभी वह छः वर्ष का है। अगले वर्ष पढ़ने भेजना है।"

और वे बच्चे ? उन्होंने आज तक 'अच्छा!' (बापू) कहकर नहीं पुकारा। उसे अँधेरे में टटोलते वे हँस पड़ते थे।

पप्पु नायर बच्ची को आवाज देकर बाँहें फैलाता। मगर बच्ची उसकी ओर देख नखरे करती। एक बार नायर ने रामन से कहा, "बबुआ! जरा पान बना दे।"

उस शैतान लड़के ने पान के पत्ते पर चूना लगाया। और फिर, सुपाड़ी की जगह एक कंकड़ रख पान लपेट दिया। पप्पू नायर की जीभ छिल गयी। बच्चों ने हँसी से तालियाँ बजायी। वह भी अपने को भूलकर ठहाका मार उठा। एक दिन वह लाठी टेकता, टटोलता बरामदे से आँगन पर उतर रहा था। रामन माँ से झगड़कर गुस्से में रसोईघर से बाहर आ रहा था। उसने पप्पु नायर की लाठी को हाथ से धक्का दे दिया।

बेचारा नायर मुँह के बल गिर पड़ा। इसके बावजूद भी वह लोगों को अपने बेटे की होशियारी की घटनाएँ सुनाता।

और दो साल बीते। रामन को स्कूल में भर्ती नहीं किया गया। पप्पु नायर बीच-बीच में भार्गवी से उसकी चर्चा करता तो वह कहती, "तुम्हारी जीभ यों ही पड़ी नहीं रहेगी ?"

"सो बात नहीं। मैं क्या ठीक नहीं कह रहा हूँ ?"

वह उत्तर नहीं देती। लापरवाही से अपने रास्ते चल पड़ती। एक बार शिकायत आयी कि रामन छोटी-छोटी चोरी करता है। नायर ने उससे पूछा, "क्या यह उचित है ?"

उसने जवाब दिया, "मैं सोच लूँगा।"

पप्पु नायर ने अपने मन को समझाया कि आखिर बच्चे हैं। बड़े होते-होते सुधर जाएँगे।

भार्गवी के फिर से गर्भ रह गया। पप्पू नायर को ताज्जुब हुआ। उसने भार्गवी से पूछा, "भार्गवी, यह कैसे ?"

वह कुछ नहीं बोली। उसने रामन को किसी के साथ रहने भेज दिया। नायर ने पड़ोसिन से शिकायत की, "क्या उसे यों भेजना ठीक था ? क्या उसे पढ़ना-लिखना ठीक नहीं है ?"

चमक उठती। भार्गवी एक बार फिर से क्लान्त और फिर शान्त हो जाती।

एक दिन उसने पप्पु नायर से पूछा :

"क्या तुम भीख नहीं माँग सकते?"

"अरी, बात तो सही है। अक़्ल की भी है। मगर यह गाँव छोड़कर बाहर जाना पड़ेगा। बच्चों को छोड़ जाने को मन नहीं करता।"

भार्गवी के फिर गर्भ रह गया। अबकी बार वह एकदम बीमार पड़ गयी। दिनों तक उस घर में चूल्हा नहीं जला। पप्पु नायर रोज दोपहर के वक्त रामन को पड़ोस के ब्राह्मण-घर भेज देता। वे जो काँजी देते उसे माँ और बच्चे पी लेते। कुछ बचता तो पप्पु नायर खुद भी पी लेता। वह कहता, "रामायण सुनते रहने पर मुझे खाने-पीने की चिन्ता नहीं सताती।"

वह दिन-भर किसी से रामायण पढ़वाकर सुनता। सुनी हुई पंक्तियाँ दुहराता।

बच्चे आवारा हो गये। रामन दिन में घर पर दिखाई तक न देता। वह घर-घर माँगता भटकता। बच्ची बीमार हो चली। पप्पु नायर पड़ोस से चावल उधार लेकर बच्चे को काँजी पिलाता। रामन साँझ होते-होते घर लौटता। पप्पु नायर उससे संध्या पर 'नामावली' जपने को कहता, पर वह उसकी परवाह नहीं करता।

पप्पु नायर उसे समीप बैठाकर पुराण-कथाएँ सुनाना शुरू करता। पर लड़का चुपचाप खिसक जाता। नायर की कथा जारी रहती। रसोईघर से बालक की आवाज़ आने पर ही वह जान पाता कि रामन भाग गया है।

भार्गवी ने फिर एक बच्चे को जन्म दिया। चार ही दिन बाद वह मर गया। पप्पु नायर ने मन को सान्त्वना दी, "यह भी अच्छा हुआ। वह इसे कैसे पालती?" उसने भार्गवी से कहा, "बच्चों को पालना हमारा फ़र्ज भी है। अभी हमारे दो बच्चे हैं। इनका गुज़ारा किसी तरह हो ही जाएगा। आगे हमें बच्चे नहीं चाहिए।"

रामन छह बरस का हो गया। पप्पु नायर ने उसकी शिक्षा शुरू करनी चाही। उसने उसे स्कूल में भर्ती करा दिया।

भार्गवी को ब्राह्मण-घर की नौकरी मिल गयी। नायर ने कहा कि मरे हुए बच्चे की किस्मत से यह नौकरी मिली है। यों एक जून की रोटी का रास्ता निकल आया। मगर नायर को कोई लाभ नहीं था। वह भूखा ही रहता। दोपहर और सायंकाल मालिक के घर से चावल लाकर माँ-बच्चे खा लेते। नायर बरामदे पर बैठा रामायण सुनता या राम नाम जपता रहता। कभी-

बोला, "आखिर बच्चे ही तो हैं।"

"तुम्हें क्या पता है, पप्पु नायर ?"

"सच हो सकता है, दीदी। नया बच्चा—वह—दीदी ! मैं बेवकूफ़ नही हूँ। जो आँखो से देख नही पाते वे अन्दर से होशियार होते हैं। मैंने थोड़ा-बहुत समझ लिया है। एक दिन इस घर मे सिक्को की खनखनाहट सुन पडी थी।"

"तुम इस बरामदे पर बैठे रहते हो। वह राच्छसिन है।"

पप्पू नायर ने कुछ नही कहा। इतना ही बोला :

"तो क्या हुआ ? दुनिया यह नही कहेगी कि उन बच्चो का कोई बाप नही है।"

"क्या वे तुम्हे 'अच्छा' (बापू) पुकारते है ?"

"सो बात नही। मैंने उन्हे प्यार किया है। देखो मेरे रामन और देवकी मेरे सामने खडे हैं। कितने कोमल लग रहे है ? सोने से लाल ! वे मेरे बच्चे हैं। क्या उनके लिए मुझे कुछ नही करना है ?"

"वह तुम्हे धोखा दे रही है।"

"वह बेचारी है। कितनी भूख बरदाश्त करती रही ! हो सकता है, उसने गलती की हो। यही उसकी रोटी का उपाय रहा होगा। दुनिया मे अपनी इज्जत रखने के लिए उसे एक मर्द जो चाहिए। कम-से-कम उसका इतना उपकार तो मैं कर सका।

पड़ोसिन के पास कोई जवाब नही था।

वह मन बड़ा उदार था। वह अँधेरे मे टटोलता नही था। उसका हृदय चिरप्रकाश से उज्ज्वल था। उस प्रकाश-धारा मे अनेक ब्रह्माण्ड अणुओं की तरह खेल रहे थे।

पड़ोसिन चुपचाप वापस चली गयी। उस दिन भी रात को पड़ोसियों ने पप्पु नायर को कुचेलवृत्तम् काव्य गाते सुना था।

"वह तो···" कहते-कहते पड़ोसिन चुप हो गयी। वह भार्गवी के कई दुर्व्यवहारों की गवाह रही है। पप्पु नायर के प्रति भार्गवी के किये अपराधों-अत्याचारों को देखकर उसका कलेजा तड़प उठा था। उसने खुद देखा है कि भार्गवी चावल सब्जी पकाकर खुद खा जाती और वह अन्धा बेचारा भूखा रह जाता। यह देख वह रो भी उठती। पडोसिन अब की बार पप्पु नायर की माँ का सन्देश लायी थी। बिरादरी यह करुण कहानी खुलेआम बताती थी। मगर हमदर्दी के कारण कोई उनके कानों तक वह सत्य नही पहुँचाता था। यो सनातन अन्धकार मे ससार के भीषण पहलू छिपे रहे। दुनिया डरती थी कि उस आदमी मे उन नारकीय घटनाओं को सहन करने की ताकत नही होगी। ससार उस के अनुपम वात्सल्य पर पुलकित हो उठा। उसके अचंचल आशावाद पर ससार को आश्चर्य हुआ। उस आराना ग्रोर हार्दिक त्याग के सामने ससार ने सिर नवाया। पप्पु नायर ने कभी क्रोध मे आकर भार्गवी को एक अपशब्द तक नही कहा। वह इस निठुर तथ्य को कैसे बर्दाश्त करता?

पडोसिन से वह कहा नही जाता। बातचीत मे पप्पु नायर ने कहा, "मेरा बेटा होशियार है। वह किसी बड़े अफसर के यहाँ रहता है। वहाँ वह पढ़ेगा लिखेगा।"

"पप्पु नायर, वह तुम्हारा बच्चा नही है।"

"नही, वह भगवान का बच्चा है। यह संसार ही उसकी माया है न?"

पड़ोसिन आगे कुछ नही बोली। उसमे बोलने की हिम्मत नही रही।

अब की बार भार्गवी के बच्चा हुआ। नायर इस सन्तान-लाभ से बहुत खुश नजर आया।

वह कहता था कि यह बच्चा उसका साथ देगा।

फिर से एक दिन पड़ोसिन आयी। बोली, "पप्पु नायर, किस्मत को सराहो कि अन्धे हो। इस दुनिया का नरक आँखों देखना नही पड़ता।"

"ससार मे कोई कष्ट नही हुआ करता। रही गरीबी की बात सो वह भी दूर हो जाएगी। दुःख अगर है तो उसके साथ सुख भी तो है, दीदी।

"अरे वह तो···"

"मुझे कोई कष्ट नही! मेरे प्रभु ने मुझे कोई दुःख नही दिया। अपने बच्चो के विषय मे चिन्ता जरूर है। रामन ने अभी तक कोई चिट्ठी नही दी।"

"उन बच्चों को आँखों से न देखने पर तुम्हें ये बातें कैसे महसूस होती?"

"अपने बच्चों को मैं देख रहा हूँ।"

"अच्छा! तो क्या उनके बाप तुम हो?"

पडोसिन का दिल धड़क उठा। अनजाने ही उसके मुँह से ये शब्द निकल गये थे। पप्पु नायर जवाब दिये बिना कुछ सिसकता रहा। मगर दूसरे क्षण वह

छोटी दुनिया के कोने-कोने में दीदी की खोज करती रही। वह आवाज़ आज भी उसके कानों में गूँजती रहती है।

उसकी जन्मभूमि—उसे भी वह भूल जाएगी। उससे उसका सारा सम्बन्ध खतम हो गया। किसी का कुछ भी नहीं बिगड़ने वाला है।

उस लम्बे सफ़र में माँ-बेटी कुछ नहीं बोली। आखिर दोनों दूर देश में जा पहुँचीं। माँ ने कहा, "रोते-रोते तेरा मुख इतना विकृत हो गया कि कोई उसे देखना नहीं चाहेगा।"

लक्ष्मी ने दीन स्वर में कहा, "माँ, मुझे डर लगता है। हम लौट चलें। मैं अपने घर-परिवार को कलंकित नहीं होने दूँगी। मैं यूँ ही रहूँगी। माँ, मैं शादी नहीं करूँगी। इस पराये देश में मेरा दम घुटता है।"

विधवा ने उसे बहुत उल्टा-सीधा कहा।

वह एक शहर था। लोग अपरिचित भाषा बोलते हैं। शक्ल-सूरत में अपने परिचितों से एकदम भिन्न। लक्ष्मी दंग रह गयी।

"माँ!"

"क्या है री?"

"हम लौट चलें···मैं···।" तभी एक नाटा आदमी वहाँ आया। उसने उन-की परिचित भाषा में पूछा, "त्रावनकोर से आये हो?"

"जी, हाँ।" विधवा ने जवाब दिया।

उसने लक्ष्मी को ध्यान से देखा। लड़की सिर झुकाकर बच्चे की तरह माँ से सटकर खड़ी हो गयी।

"माँ···!"

विधवा ने दाँत पीसकर, उसे घूरकर देखा।

"मोटर है।" उस व्यक्ति ने कहा।

वह पोर्टिको में खड़ी मोटर में जा बैठा। विधवा को, लक्ष्मी को जबर्दस्ती मोटर में बिठाना पड़ा।

मोटर एक होटल में जाकर रुकी। लक्ष्मी ने आँसू-भरी आँखों से माँ से पूछा, "तुम्हारा कौन है यह?"

विधवा ने अनसुना कर दिया।

एक बुढ़िया द्वार पर आयी। यद्यपि वह मुस्कुरा रही थी, फिर भी उसके चेहरे पर क्रूरता और रूखापन दिखाई पड़ रहा था। उसने लक्ष्मी को ध्यान से देखकर, पीछे खड़ी एक औरत से, लक्ष्मी के लिए अपरिचित भाषा में, कुछ कहा। उस औरत ने भी कुछ पूछा। उन दोनों ने आपस में तीन-चार शब्दों का प्रयोग किया होगा।

उसे एक ऐसे कमरे में ले जाया गया, जहाँ तीन-चार और औरतें खड़ी

बेटियाँ

अपने प्यारे जन्मदेश को एक बार फिर अन्तिम रूप से देखने के लिए उसने खिड़की से सिर बाहर डाला। पर आँसुओं के कारण कुछ देख नहीं पायी। हज़ारों स्मृतियाँ उसके हृदय में जाग उठीं। उसे लगा कि वह अनिश्चित दिशा की ओर बहती जा रही है।

रेलगाड़ी भाग रही थी। दूर पेड़ों के ऊपर से मन्दिर का ध्वज उसने देखा। लक्ष्मी अम्माल फूट-फूट कर रो उठी। पास बैठी माँ ने क्रुद्ध होकर पूछा :

"यह क्या है?"

"माँ, अब की बार मुझे···मेरी बहिन को···"

"बोल मत।"

उसकी एक बड़ी बहिन थी, प्यारी बहन। तब लक्ष्मी चार या पाँच बरस की रही होगी। धुंधली-सी यादें हैं उसकी। एक काला-कलूटा और मोटा आदमी माँ से देर तक बातें किया करता था। एक दिन बहिन ने अच्छी साड़ी पहन रखी थी। रो रही थी वह। लक्ष्मी ने पूछा था, "दीदी कहाँ जा रही है?"

दीदी का जवाब उसे याद है, "बहिन, वह तू भी जानती है।"

"वापस कब आओगी, दीदी?"

दीदी ने कुछ कहा। बार-बार उसे चूमकर दीदी चली गयी। फिर कभी नहीं आयी। उम्र कुछ चढ़ी और बातें जानने की तमीज आयी तो लक्ष्मी ने वह जवाब याद करने की कोशिश की। दीदी की आवाज आज भी उसके कानों में गूँजती है, पर वह अस्पष्ट है। किसी परायी भाषा की तरह समझ में नहीं आ रही। लक्ष्मी को विश्वास हो गया, वह जवाब ही दीदी से सम्बन्धित रहस्य बता देगा। उसने हर क्षण दीदी का इन्तजार किया। कई रात उसे नींद नहीं आयी। दीदी के प्यार के लिए लालायित लक्ष्मी की आत्मा उसकी

छोटी दुनिया के कोने-कोने में दीदी की खोज करती रही। वह आवाज आज भी उसके कानों में गूंजती रहती है।

उसकी जन्मभूमि—उसे भी वह भूल जाएगी। उससे उसका सारा सम्बन्ध खतम हो गया। किसी का कुछ भी नहीं बिगड़ने वाला है।

उस लम्बे सफर में माँ-बेटी कुछ नहीं बोलीं। आखिर दोनों दूर देश में जा पहुँचीं। माँ ने कहा, "रोते-रोते तेरा मुख इतना विकृत हो गया कि कोई उसे देखना नहीं चाहेगा।"

लक्ष्मी ने दीन स्वर में कहा, "माँ, मुझे डर लगता है। हम लौट चलें। मैं अपने घर-परिवार को कलंकित नहीं होने दूंगी। मैं यूं ही रहूंगी। माँ, मैं शादी नहीं करूंगी। इस पराये देश में मेरा दम घुटता है।"

विधवा ने उसे बहुत उल्टा-सीधा कहा।

वह एक शहर था। लोग अपरिचित भाषा बोलते हैं। शक्ल-सूरत में अपने परिचितों से एकदम भिन्न। लक्ष्मी दंग रह गयी।

"माँ!"

"क्या है री!"

"हम लौट चलें···मैं···।" तभी एक नाटा आदमी वहाँ आया। उसने उन-की परिचित भाषा में पूछा, "त्रावनकोर से आये हो?"

"जी, हाँ।" विधवा ने जवाब दिया।

उसने लक्ष्मी को ध्यान से देखा। लड़की सिर झुकाकर बच्चे की तरह माँ से सटकर खड़ी हो गयी।

"माँ···!"

विधवा ने दाँत पीसकर, उसे घूरकर देखा।

"मोटर है।" उस व्यक्ति ने कहा।

वह पोर्टिको में खड़ी मोटर में जा बैठा। विधवा को, लक्ष्मी को जबर्दस्ती मोटर में बिठाना पड़ा।

मोटर एक होटल में जाकर रुकी। लक्ष्मी ने आँसू-भरी आँखों से माँ से पूछा, "तुम्हारा कौन है यह?"

विधवा ने अनसुना कर दिया।

एक बुढ़िया द्वार पर आयी। यद्यपि वह मुसकुरा रही थी, फिर भी उसके चेहरे पर क्रूरता और रूखापन दिखाई पड़ रहा था। उसने लक्ष्मी को ध्यान से देखकर, पीछे खड़ी एक औरत से, लक्ष्मी के लिए अपरिचित भाषा में, कुछ कहा। उस औरत ने भी कुछ पूछा। उन दोनों ने आपस में तीन-चार शब्दों का प्रयोग किया होगा।

उसे एक ऐसे कमरे में ले जाया गया, जहाँ तीन-चार और औरतें खड़ी

थीं। उन्होंने भी उसे घूरकर देखा।

एक खास प्रकार का अजनबीपन वहाँ लक्ष्मी ने देखा। उनकी दृष्टि और बातचीत खास प्रकार की थी। उन की आँखें निर्जीव थी। चेहरे फूले हुए थे। किसी की उम्र का ठीक अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता था। महँगे कपड़े और गहने पहन रखे थे। हँसी-मज़ाक, भाव और उम्र में कहीं तो ताल-मेल नहीं दीख रहा था। उसकी माँ अगले कमरे में चली गयी।

एक मर्द वहाँ आया। गले में फूल-माला थी। काला रंग। ओंठ सूखे हुए और आँखें क्षुब्ध और निर्जीव। लक्ष्मी की भुजा पर उसकी साँस टकरायी। शराब की गन्ध। उस बुढ़िया ने कुछ पूछा। उसका उसने जवाब भी दिया।

माँ वापस आयी, तो उसकी आँखें सजल थी। फिर भी आश्वासन का भाव था। सब लोग दूसरे कमरे में चले गये। सिर्फ़ माँ-बेटी वहाँ रह गयी थीं। वह सायंकाल था। माँ ने कहा, "मेरी प्यारी बिटिया, कपड़े बदल ले।"

"मुझे क्यों छोड़ रही हो माँ?"

"छोड़ रही हूँ!"

"हाँ, माँ। यह अच्छा नहीं है। यह सब ठीक नहीं लग रहा। मैंने शादियाँ देखी हैं। कहीं भी ऐसा नहीं था।"

"हर जगह का आचार अलग तरह का होता है, बेटे!"

लक्ष्मी ने निषेध भाव से सिर हिलाया।

माँ ने उसे पास बुलाकर सिर चूम लिया।

उसने कहा, "हम वापस चल दें। यह नरक है। मैं कभी माँ को भार नहीं बनूँगी। हमारे देश में अमीर लोग हैं। उनके यहाँ नौकरी करूँगी। मेरी माँ, मुझे इस प्रकार छोड़कर मत जा। मुझ से सहा नहीं जाएगा।"

एक क्षण बाद विधवा ने कहा, "मेरी लाड़ली ऐसा मत कह। माँ कैसे दहेज इकट्ठा करे? माँ ने बहुत कोशिश कर देखी। पैसे के बिना कोई शादी नहीं करेगा। मेरी विधि ही ऐसी है, बेटी। अपनी सन्तानों के पास न रहने मैं मर जाऊँगी। हम गरीब जो ठहरे।"

विधवा ने लम्बी साँस ली।

लक्ष्मी जानती है—माँ ने बहुत कोशिश की। ज्यों-ज्यों वह बढ़ने लगी, त्यों-त्यों औरतें आपस में फुसफुसाने लगीं। माँ की उत्कण्ठा देख बेटी का दिल पसीज गया। पर उसने कहा, "माँ, अच्छा है यों ही मर जाएँ।"

"न, यह पाप है बेटे!"

"और यह मुश्किल है।"

"होगा। पर उसे मान ले। ईश्वर हमेशा एक विधवा से क्रूर नहीं रहेगा। इससे भलाई होगी। तू चैन से रहेगी तो माँ को याद करना। ईश्वर की सेवा

छोटी दुनियाँ के कोने-कोने में दीदी की खोज करती रही। वह आवाज़ आज भी उसके कानों में गूँजती रहती है।

उसकी जन्मभूमि—उसे भी वह भूल जाएगी। उससे उसका सारा सम्बन्ध खतम हो गया। किसी का कुछ भी नहीं बिगड़ने वाला है।

उस लम्बे सफर में माँ-बेटी कुछ नहीं बोलीं। आखिर दोनों दूर देश में जा पहुँचीं। माँ ने कहा, "रोते-रोते तेरा मुख इतना विकृत हो गया कि कोई उसे देखना नहीं चाहेगा।"

लक्ष्मी ने दीन स्वर में कहा, "माँ, मुझे डर लगता है। हम लौट चलें। मैं अपने घर-परिवार को कलंकित नहीं होने दूँगी। मैं यूँ ही रहूँगी। माँ, मैं शादी नहीं करूँगी। इस पराये देश में मेरा दम घुटता है।"

विधवा ने उसे बहुत उल्टा-सीधा कहा।

यह एक शहर था। लोग अपरिचित भाषा बोलते हैं। शक्ल-सूरत में अपने परिचितों से एकदम भिन्न। लक्ष्मी दंग रह गयी।

"माँ!"

"क्या है री!"

"हम लौट चलें···मैं···।" तभी एक नाटा आदमी वहाँ आया। उसने उनकी परिचित भाषा में पूछा, "श्रावनकोर से आये हो?"

"जी, हाँ।" विधवा ने जवाब दिया।

उसने लक्ष्मी को ध्यान से देखा। लड़की सिर झुकाकर बच्चे की तरह माँ से सटकर खड़ी हो गयी।

"माँ··!"

विधवा ने दाँत पीसकर, उसे घूरकर देखा।

"मोटर है।" उस व्यक्ति ने कहा।

वह पोर्टिको में खड़ी मोटर में जा बैठा। विधवा को, लक्ष्मी को जबर्दस्ती मोटर में बिठाना पड़ा।

मोटर एक होटल में जाकर रुकी। लक्ष्मी ने आँसू-भरी आँखों से माँ से पूछा, "तुम्हारा कौन है यह?"

विधवा ने अनसुना कर दिया।

एक बुढ़िया द्वार पर आयी। यद्यपि वह मुस्कुरा रही थी, फिर भी उसके चेहरे पर क्रूरता और रूखापन दिखाई पड़ रहा था। उसने लक्ष्मी को ध्यान से देखकर, पीछे खड़ी एक औरत से, लक्ष्मी के लिए अपरिचित भाषा में, कुछ कहा। उस औरत ने भी कुछ पूछा। उन दोनों ने आपस में तीन-चार शब्दों का प्रयोग किया होगा।

उसे एक ऐसे कमरे में ले जाया गया, जहाँ तीन-चार और औरतें खड़ी

थीं। उन्होंने भी उसे घूरकर देखा।

एक खास प्रकार का अजनबीपन वहाँ लक्ष्मी ने देखा। उनकी दृष्टि और बातचीत खास प्रकार की थी। उन की आँखें निर्जीव थीं। चेहरे फूले हुए थे। किसी की उम्र का ठीक अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता था। महँगे कपड़े और गहने पहन रखे थे। हँसी-मजाक, भाव और उम्र में कहीं तो ताल-मेल नहीं दीख रहा था। उसकी माँ अगले कमरे में चली गयी।

एक मर्द वहाँ आया। गले में फूल-माला थी। काला रंग। ओंठ सूखे हुए और आँखें झुकी और निर्जीव। लक्ष्मी की भुजा पर उसकी साँस टकरायी। शराब की गन्ध। उस बुढ़िया ने कुछ पूछा। उसका उसने जवाब भी दिया।

माँ वापस आयी, तो उसकी आँखें सजल थीं। फिर भी आश्वासन का भाव था। सब लोग दूसरे कमरे में चले गये। सिर्फ माँ-बेटी वहाँ रह गयी थीं। वह सार्थक था। माँ ने कहा, "मेरी प्यारी बिटिया, कपड़े बदल ले।"

"मुझे क्यों छोड़ रही हो माँ?"

"छोड़ रही हूँ!"

"हाँ, माँ। यह अच्छा नहीं है। यह सब ठीक नहीं लग रहा। मैंने शादियाँ देखी हैं। कहीं भी ऐसा नहीं था।"

"हर जगह का आचार अलग तरह का होता है, बेटे!"

लक्ष्मी ने निषेध भाव से सिर हिलाया।

माँ ने उसे पास बुलाकर सिर चूम लिया।

उसने कहा, "हम वापस चल दें। यह नरक है। मैं कभी माँ को भार नहीं बनूँगी। हमारे देश में अमीर लोग हैं। उनके यहाँ नौकरी करूँगी। मेरी माँ, मुझे इस प्रकार छोड़कर मत जा। मुझ से सहा नहीं जाएगा।"

एक क्षण बाद विधवा ने कहा, "मेरी लाडली ऐसा मत कह। माँ कैसे दहेज इकट्ठा करे? माँ ने बहुत कोशिश कर देखी। पैसे के बिना कोई शादी नहीं करेगा। मेरी विधि ही ऐसी है, बेटी। अपनी सन्तानों के पास न रहते मैं मर जाऊँगी। हम गरीब जो ठहरे।"

विधवा ने लम्बी साँस ली।

लक्ष्मी जानती है—माँ ने बहुत कोशिश की। ज्यों-ज्यों वह बढ़ने लगी, त्यों-त्यों औरतें आपस में फुसफुसाने लगीं। माँ की उत्कण्ठा देख बेटी का दिल पसीज गया। पर उसने कहा, "माँ, अच्छा है यों ही मर जाएँ।"

"न, वह पाप है बेटे!"

"और यह मुश्किल है।"

"होगा। पर उसे मान ले। ईश्वर हमेशा एक विधवा से क्रूर नहीं रहेगा। इससे भलाई होगी। तू चैन से रहेगी तो माँ की याद करना। ईश्वर की सेवा

कर, बेटी। उनकी दया-दृष्टि बनी रहेगी।"

"पर पर···माँ, दीदी कहाँ है? माँ ने उसकी भलाई की कामना की थी।"

विधवा काँप उठी। अपने आँसू रोकने की कोशिश की। माँ की पीड़ा बेटी ने पढ़ ली। उसने माँ को गले से लगा लिया।

"माँ, माफ कर दे, माँ!"

"मेरे बेटे, माँ ने बहुत-कुछ सहा है। माँ का हृदय पत्थर हो गया है।"

थोड़ी देर बाद वह विधवा बोली, "तेरी दीदी बहुत खुश है। उसका मर्द अमीर है। हैदराबाद में है वह।···पर उसने अपनी माँ को भुला दिया। जाते समय उसने मुझे कोसा था। मुझ से कहा था कि 'सोचना कि मैं मर गयी हूँ।' उसमें प्यार नहीं था, पर बेटे, तू ऐसी नहीं है।"

विधवा की आँखें ऊपर उठीं। अगले कमरे से किसी ने पूछा:

"बात खतम हुई?"

"एक क्षण और।"

"यह सब क्या है माँ?" लक्ष्मी ने पूछा।

"हमें अलग होना है।"

"हमेशा के लिए?"

"तू अगर अपनी दीदी के समान है तो—"

लक्ष्मी ने माँ को घूरकर देखा। यह कैसा मुखभाव!

"माँ, माँ रोती क्यों नहीं?"

विधवा एक कुर्सी पर सिर झुकाए बैठ गयी। पर वह रो नहीं रही थी। लक्ष्मी के आँसू भी सूख गये। एक क्षण के लिए मुस्कुराहट।

"इसमें भलाई है, माँ?"

"हाँ, बेटे।"

थोड़ी देर बाद उसने पूछा, "शादी की रस्म नहीं होगी, माँ?"

"होगी।"

लक्ष्मी ने अपना मुख पोछकर कहा, "माँ, मेरे बाल सवार दे।"

"तू···तूने जाने का निश्चय कर लिया न?"

"जाना नहीं है?"

क्षण-भर बाद माँ ने कहा, "जाना ही होगा।"

थोड़ी देर में लक्ष्मी का साज-सिंगार हो गया। आइने के सामने खड़ी हुई तो उसका कद और ऊँचा हो गया। वधू—जिसके सपनों का साक्षात्कार होने वाला है, प्रसन्नचित्त। अब वह ऐसी डरी हुई [illegible] बच्ची नहीं जो माँ की साड़ी में छिप जाती।

थीं। उन्होंने भी उसे घूरकर देखा।

एक खास प्रकार का अजनबीपन वहाँ लक्ष्मी ने देखा। उनकी दृष्टि और बातचीत खास प्रकार की थी। उन की आँखें निर्जीव थी। चेहरे फूले हुए थे। किसी की उम्र का ठीक अन्दाजा नही लगाया जा सकता था। महँगे कपड़े और गहने पहन रखे थे। हँसी-मज़ाक, भाव और उम्र मे कही तो ताल-मेल नही दीख रहा था। उसकी माँ अगले कमरे में चली गयी।

एक मर्द वहाँ आया। गले में फूल-माला थी। काला रंग। ओठ सूखे हुए और आँखें झुकी और निर्जीव। लक्ष्मी की भुजा पर उसकी साँस टकरायी। शराब की गन्ध। उस बुढ़िया ने कुछ पूछा। उसका उसने जवाब भी दिया।

माँ वापस आयी, तो उसकी आँखें सजल थी। फिर भी आश्वासन का भाव था। सब लोग दूसरे कमरे मे चले गये। सिर्फ माँ-बेटी वहाँ रह गयी थी। वह सार्थक था। माँ ने कहा, "मेरी प्यारी बिटिया, कपड़े बदल ले।"

"मुझे क्यो छोड़ रही हो माँ ?"

"छोड़ रही हूँ !"

"हाँ, माँ। यह अच्छा नही है। यह सब ठीक नही लग रहा। मैंने शादियाँ देखी हैं। कही भी ऐसा नही था।"

"हर जगह का आचार अलग तरह का होता है, बेटे !"

लक्ष्मी ने निषेध भाव से सिर हिलाया।

माँ ने उसे पास बुलाकर सिर चूम लिया।

उसने कहा, "हम वापस चल दें। यह नरक है। मै कभी माँ को भार नही बनूँगी। हमारे देश मे अमीर लोग हैं। उनके यहाँ नौकरी करूँगी। मेरी माँ, मुझे इस प्रकार छोड़कर मत जा। मुझ से सहा नही जाएगा।"

एक क्षण बाद विधवा ने कहा, "मेरी लाड़ली ऐसा मत कह। माँ कैसे दहेज इकट्ठा करे ? माँ ने बहुत कोशिश कर देखी। पैसे के बिना कोई शादी नहीं करेगा। मेरी विधि ही ऐसी है, बेटी। अपनी सन्तानों के पास न रहते मैं मर जाऊँगी। हम गरीब जो ठहरे !"

विधवा ने लम्बी साँस ली।

लक्ष्मी जानती है—माँ ने बहुत कोशिश की। ज्यों-ज्यों वह बढ़ने लगी, त्यों-त्यों औरतें आपस मे फुसफुसाने लगी। माँ की उत्कण्ठा देख बेटी का दिल पसीज गया। पर उसने कहा, "माँ, अच्छा है यों ही मर जाएँ।"

"न, वह पाप है बेटे !"

"और यह मुश्किल है।"

"होगा। पर उसे मान ले। ईश्वर हमेशा एक विधवा से क्रूर नही रहेगा। इससे भलाई होगी। तू चैन से रहेगी तो माँ की याद करना। ईश्वर की सेवा

ताड़ीखाने में[1]

उस सड़क से मैं कई बार गया हूँ। मुझे वहाँ से जाने में ज़रा भी संकोच नहीं था कि वहाँ एक ताड़ीखाना है। मगर उस दिन उस सड़क की ओर मुड़ते हुए मैं देखने लगा कि कोई देख तो नहीं रहा है। अंगोछा फैलाकर मैंने सिर पर डाला और सिर को ढँक लिया। मेरे सारे शरीर में रोंगटे खड़े हो गये। मैं जीवन में पहली बार ताड़ीखाने जा रहा हूँ। पीने जा रहा हूँ।

मैं सही देख-रेख में पाला-पोसा गया आदमी हूँ। वैसे मैं भला मानस था और भलेमानस बने रहने की मैंने कोशिश भी की थी। मेरा जीवन कई तरह के नियन्त्रणों की एक अविच्छिन्न परम्परा था। मुझे हर वक़्त बे-सिरपैर के विचारों और क्रान्तिकारी अभिलाषाओं पर नियन्त्रण रखना पड़ा। जागने से लेकर सो जाने तक तीव्र मानसिक वृत्तियों को काबू में करना पड़ा। नींद में सपना देखता होता तो परेशान हो जाता। वह मेरे पतित होने का दृष्टान्त नहीं है क्या? एक क्षण के लिए आलसी हो गया होता या लगाम कुछ ढीली पड़ गयी होती, या ध्यान कम हो गया होता तो मेरा सर्वनाश हो जाता। वैसी ही एक दुर्बल घड़ी में मैं अपने दोस्त के साथ चल निकला था।

रात को दस बज गये थे। सड़क पर लोगों का आना-जाना कम हो गया था। हमारे पीछे थोड़ी दूर दो-तीन लोग एक साथ चले आ रहे थे। मैंने दोस्त से पूछा कि उनके चले जाने तक थोड़ी देर क्यों न रुक लिया जाय। लेकिन उसने बात नहीं मानी और साथ चलने का *आदेश दिया।*

सड़क के किनारे उत्तर को अभिमुख दस कमरोंवाला एक

---

१. कल्लुषाप्पिल्।

रस्म पूरी हो गयी। वह मालावाला ही वर था। दावत भी उसी होटल मे थी। माँ और स्टेशन पर आये व्यक्ति के बीच हिसाब हो गया। पति-पत्नी मोटर में जा चढ़े।

"माँ, फिर मिलेंगी।" उसने कहा। तब तक मोटर आगे बढ गयी। वह विधवा एक शब्द तक नही बोल पायी। पत्थर की मूर्ति की तरह द्वार पर ही खडी रही।

इस तरह उस टूटी जीवन-वीणा का अन्तिम तार भी टूट गया। अन्तिम गायक चला गया। वह एक माँ है। उसने रिक्तता ही देखी। एक क्षण के लिए वह देख नही पायी। सुन नही पायी। उसकी कोख से कोई लडका पैदा नही हुआ। पर वह बाँझ नही थी।···पर माँ बनने से क्या, वह बाँझ से भी बदकिस्मत रही।

तभी कही से एक भिखारिन वहाँ आयी। उसने विधवा को घूरकर देखा। एक क्षण विधवा को विश्वास नही हुआ। उसका दम घुटने लगा।

"तू·· तू···" विधवा ने गद्गद् होकर पूछा। भिखारिन ने दुनिया के प्रति घृणा की हँसी हँस दी। उसने पूछा, "छोटी को भी खो दिया, क्यो न? सौदा कैसा रहा? क्या मिला?"

"तू···तू···"

"हाँ, बड़ी लडकी। लगातार उपयोग से पुरानी हो गयी तेरी इस बेटी को वेश्यालय से निकाल दिया तो इस बार थोडी और अच्छी को दे दिया। पर वह भी पुरानी पड़ जाएगी। और फिर···?"

"तेरी किस्मत···या कि?" विधवा ने असीम पीडा से कहा।

"हमारी?"

"हाय भगवन्!"

"कोई बात नही," भिखारिन मुडकर चली गयी।

"मेरी बेटी···" विधवा जमीन पर गिर पड़ी।

वापस खिसक जाता। मुझे लौट जाना चाहिए था। तभी किसी मछली का काँटा मेरे पैर में चुभ गया।

मुझ जैसा नेक आदमी ताड़ीखाने के पीछे खड़ा है! यहाँ बैठनेवालों में अगर कोई मुझे देख ले, तो मेरा सब कुछ गया। बत्तीस साल तक मैंने जो कुछ पाया, वो सब खो जाता। मेरे विश्वास और आदर्श हार मानकर, मुझे देख मेरा परिहास करते हैं। पर मुझसे लौटा नहीं जा सकता। पता नहीं क्यों!

अन्दर से उभरता हँसी-मजाक का स्वर। बीच-बीच में गालियाँ भी। पीछे बैठनेवालों को कब अन्दर प्रवेश मिलेगा? किसी प्रकार अन्दर जाकर लौटना काफी था—मेरे लिए।

हम एक द्वार पर जा खड़े हुए। खिड़की के ऊपर से मैंने अन्दर झांक कर देखा। तीन-चार बेंचों पर लोग बैठे थे। कुछ लोग पी रहे थे, दूसरे कुछ बात-चीत कर रहे थे। करीब पैंतालीस बरस की एक औरत ताड़ी और दूसरी चीजें लाकर दे रही थी।

मैंने देखा कि ताड़ी कैसे पी जाती है। जैसे पानी पिया जाता है—वैसे ही। कुछ लोग प्याला उठाकर मुँह को लगाते वक्त सिर झटक रहे थे।

"चलो, अन्दर चलें। यहाँ कोई देख लेगा।" मैंने दोस्त से कहा। उसने जवाब दिया, "ताड़ीखाने के पीछे जितने भी लोग इकट्ठे हो जायें, वे एक-दूसरे को नहीं पहचानते।"

अन्दर कहीं से किलकारी सुनाई दी।

"यह क्या है री?" अधेड़ उम्र की उस औरत ने एक तरफ देखकर किसी को डाँटा। थोड़ी देर बाद दरवाजा खोलकर एक युवती खाली बोतल लिये प्रकट हुई। उस कमरे के अन्दर भी छोटे कमरे थे। उसमें से मोमबत्ती का प्रकाश दरवाजे से होकर बाहर आ रहा था।

वह युवती करीब बीस साल की रही होगी। बढ़िया स्वास्थ्य, मोटा-ताजा शरीर। अधेड़ औरत ने उसे सिर से पैर तक देखा। उसने कहा:

"कुछ ज्यादा हो रहा है, यहाँ का भी तो देखना है!"

"यहाँ अब क्या करना है?" युवती ने पूछा।

"अब तक तू अन्दर क्या कर रही थी?"

"ताड़ी दे रही थी।"

अधेड़ औरत ने पीनेवालों से कहा, "कोई पीने आये, तो यह उनके पास से हटती ही नहीं।"

पीनेवालों में से एक ने कहा, "फिर वह हमारे पास क्यों नहीं आती?"

तभी एक रसिक ने कहा, "हमें ताड़ी पिलाने के लिए है यह बुढ़िया।"

"पर ये अपनी जवानी में···" युवती ने इतना कहा तो अधेड़ औरत हाथ

बड़ा मकान था वह। एक-एक कमरे को पार करके दोस्त मुझे साथ ले चला। करीब पांचवें कमरे के पास "योर ओन व्हाइट-हॉल. डिलीसस टाडी. प्रफरेबल करोज" वाला बड़ा बोर्ड लगा था।

"अन्दर चलें, न?" मैंने दोस्त से पूछा। जीभ सूखकर मेरी आवाज लड़-खडाने लगी थी। वह स्तोभ मैं भूल नही सकता। मैं सीमा लांघ रहा था। वह कर रहा था, जो करना नही चाहिए। वह शक्ति, जो मुझे नियन्त्रित कर रही थी, टूट रही थी। मेरी अपनी वही तो एक चीज थी। 'अन्दर चलें, न?' की मेरी आवाज धीमी थी, फिर भी मेरे कानो मे गूंज गई थी। मुझे सन्देह हुआ कि क्या मैं ही वैसा बोला था। मैं पूछ रहा था कि ताडीखाने में चले न?

मेरा दोस्त मुझे जबर्दस्ती खीचकर अन्दर ले चला। हर कमरे के दरवाजे से मैंने अन्दर झांका। अन्दर कोई दिखाई नही दे रहा था। सिर्फ एक कमरे मे एक औरत दिखी, जो हँसती हुई गायब हो गयी। उसके अन्दर कोई नही है क्या? कहा जाता है कि उस समय व्यापार जोरो पर चलता है। मैंने कई लोगो को पीकर लड़खड़ाते चलते देखा भी है।

पीछे से आये लोग सीधे एक कमरे के अन्दर चले गये। एक कोटवाला दूर से आता दिखाई दिया। उसके पास आ जाने के पहले ही क्यों न अन्दर पहुँच जाएँ! हम नवाँ कमरा भी पार कर गये।

"क्यों, अन्दर नही जाना क्या?" मैंने पूछा। दोस्त ने कहा, "सीधे द्वार से अन्दर जायें तो वो सब देख नही पायेंगे, जिसे देखना है।"

"फिर?"

दोस्त चुप।

उस मकान और पश्चिम की ऊँची दीवार के बीच एक सँकरा रास्ता है, जिससे मुश्किल से एक आदमी जा सकता था। मेरा दोस्त मुझे वहाँ से खीच ले गया। मेरे पैर कीचड़ मे धँस गये। मेरा सारा शरीर रोमांचित हो गया। तभी दोस्त ने धीरे से कहा, "इधर से जाने वालों का ही वहाँ आदर होता है। सीधे दरवाज़े से पहुँचने वालो को गाली-गलौज सुननी पड़ेगी। उन्हे अच्छी चीज नहीं मिलेगी।"

हम दक्षिण की ओर पहुँचे। वहाँ घुप्प अँधेरा था। सभी कमरो के उस तरफ द्वार थे। वे सब, खोल और बन्द कर सकने वाली चिक से ढके थे।

एक घड़े से पैर टकरा जाने से मैं आगे को झुका, कि तभी एक प्लेट के टुकडे पर पैर लगा। मेरे सामने एक नारियल के पेड के नीचे एक आदमी सिकुड़-कर उकड़ूँ बैठा था। 'कौन है' का प्रश्न मेरे गले तक आया, पर बाहर नही निकला। एक कुत्ता कही से किकियाया। मैंने चारों ओर देखा। उन द्वारो की आड़ में दो-तीन लोग उकड़ूँ बैठे थे। मेरे दोस्त ने मुझे पकड़ा नही होता, तो मैं

कोई कारण नहीं। वह दो-तीन बार ही वहाँ गया था।

अन्दर वह किसी से झगड़ा कर रही थी। किसी की जीभ लड़खड़ा रही थी। "बाहर चला जा !" युवती ने उसे डाँट रही थी। कुछ देर बाद वह लौट आयी। एक संतरा छीलकर खा रही थी। उसकी चाल में आकर्षण था। पास आकर उसने सन्तरे की एक कली दोस्त के मुँह में रखते हुए पूछा :

"पुलिसवाले की ड्यूटी कहाँ है ?"

दोस्त उत्तर नहीं दे पाया। अवसर पाते ही मैंने कहा, "स्टेशन पर।"

"ठीक। यहाँ करतब दिखाए तो माधवी छोड़ेगी नहीं।"

"वहाँ कौन है ?"

"हैड कॉन्स्टबिल।" वह संतरे की दूसरी कली मुँह में डालने लगी तो मैंने पूछा,

"मुझे नहीं क्या ?" मैंने मुँह खोला। पर उसने एक कली लेकर मेरे हाथ पर रख दी। मेरे दोस्त ने अधीर होकर पूछा :

"कितनी देर इन्तजार करना होगा ?"

उसने उसकी गर्दन पर हाथ डाल लिया। फिर उसका मुख अपनी ओर खींचकर पूछा। "इतने अधीर क्यों हो रहे हो ? वैसे वह चुम्बन नहीं हो पाया था इतना निश्चित है।

फिर वह अन्दर चली गयी तो, दोस्त का अँगोछा भी ले गयी। चलते हुए उसने उसे अपनी कमर पर बाँध लिया था।

दोस्त ने मुझ से पूछा, "जानते हो, अगोछा क्यों ले गयी ? इसीलिए कि हम दूसरे कमरे में न चले जायें।"

वह लौटकर आयी और हमें साथ लेकर एक छोटे कमरे में चली गयी। उसके अन्दर एक छोटी बेंच थी। तीन लोग बैठ सकते थे। चारों ओर नारियल के पत्तों से बनी टटिया थी। उठकर खड़ा हो जाय, तो बाहर देख सकता है। फर्श पर गीला बालू था। कैसी बदबू थी वहाँ !

वह जाकर लोहे का एक दिया ले आयी। मेरे दोस्त ने उसे बुझा दिया। वह हँस दी, मानो कोई तमाशा हो। उसने तोतली बोली में पूछा :

"शरम लग रही है क्या ?"

अगले क्षण मेरा दोस्त एक खम्भे के समान ऊपर उठ रहा था। चिक के ऊपर रोशनी में उसका चेहरा दीख पड़ा। वह काँप रहा था। एक ठहाके के साथ उसने उसे जमीन पर खड़ा कर दिया।

मेरे अन्दर एक इच्छा हो रही थी। मैं उससे सटकर खड़ा हो गया। उसका हाथ छू लिया। पर उसने मुझे वैसे उठाया नहीं। हँसी बन्द हुई, तो उसने पूछा :

हाथ उठाते हुए उसकी तरफ लपकी। युवती ठहाका मारकर हँसती पीछे हट गयी।

इसी बीच युवती एक बोतल ताडी लेकर दूसरे कमरे मे चली गयी।

थोडी देर बाद अधेड़ औरत ने उसे बुलाया, "अरी माधवी !"

माधवी ने सुना। कुछ देर बाद उस कमरे से दबी हुई लज्जायुक्त हँसी सुनाई दी। "तू पी ले" कोई किसी से कह रहा था।

वह नारियल के पत्तों से बना दरवाजा बन्द करके बाहर चली गयी। उसके ओठो की मुस्कुराहट अभी गयी नही थी। माधवी उस औरत से बिगड़ पड़ी :

"मुझे कही नहीं रहने देगी ?"

अधेड औरत को क्रोध आ गया। उसने दाँत पीसते कहा, "अरी नालायक ! तू क्या इधर सिर्फ अपने लिए काम करती है ?"

"मैं तुम्हारा सारा काम कर नही सकती। कल किसी और को बुला लाना।"

"मैंने तुझे यहाँ काम करने दिया, तभी तो तुझे इतना पैसा मिला है ?"

"मुझे मालूम है कि तब यहाँ कितनी आमदनी होती थी, जब मैं यहाँ आयी थी। ताड़ी नीचे बहा दी जाती थी। मगर अब…अब पूरी दे भी नही पाती।"

"भिखारिन कही की ! यहाँ आयी तो मैंने नौकरी दी। अच्छे मर्दों की… मैं कुछ कहती नही…अब चार पैसा हाथ लग गया तो तेरा यह गर्व …"

वे दोनों देर तक इसी तरह झगडा करती रही। बुरा-भला कहती रही। झगड़ा थोडा कम हो गया तो मेरा दोस्त एक बार खाँसा। उसे सुनकर वह दरवाजे तक आयी।

हम अँधेरे की ओर हट गये। वह चिक हटाकर बाहर आ गयी। हमारे पास आकर मेरे दोस्त का चेहरा देखने लगी।

"कौन है, जरा देखूं तो !"

"कोई कमरा खाली नही है क्या ?" मेरे दोस्त ने पूछा।

उसने कहा, "अभी बताऊँगी। पहले जान तो लूं कि कौन हो !"

उसने दोस्त का सिर रोशनी की ओर खीचकर मुख देखा। फिर मुस्कुराकर बोली, "हा ! कहाँ थे इतने दिन ?"

"थे कहीं…अन्दर…"

उसने कहा, "कोई झंझटी आ जाता, तो जाने का नाम ही नही लेता। मैं जाकर देखकर आती हूँ।"

उसके नाज-नखरे देखने लायक थे।

वह चली गयी। मुझे लगा कि मेरे दोस्त और उसकी मैत्री काफी पुरानी है। वह एकदम पास खड़ी होकर बोल रही थी। उसने बताया कि मैत्री का ऐसा

मैं अच्छा नहीं। दुनिया ने मुझे गलत समझा कि मैं अच्छा हूँ। कल, परसों और नरसों शायद मैं इधर आऊँगा। हाँ, मैं अपने ऊपर काबू नहीं कर सका। मुझमें कोई शक्ति नहीं। मेरी सच्चरित्रता की शक्ति नष्ट हो गयी है। मेरी आत्मा मर गयी है। मैं बेसहारा हूँ। मैंने जोर से चीखना चाहा कि कोई मुझे बचा ले।

उस युवती के सन्तरे की कली के लिए मैंने मुँह खोला! मैंने उसे छुआ! मुझे उठाने और पुलकित करने के लिए। अब मैं क्या नहीं करूँगा? मुझे तिनके का भी सहारा नहीं। मैं बरबाद हो गया।···

बाहर युवती और अधेड़ औरत के बीच फिर से झगड़ा चालू हो गया था। एक परिचित गाने का स्वर सुनाई पड़ा। मेरा पड़ोसी रिक्शावाला है वह। पीकर, उन्मत्त हो वहीं गा रहा है। उस घर पर उसके चार बच्चे और बूढ़ी माँ हैं, जो भूखों मर रहे हैं। एक कुली हठी होकर पी रहा है।···दूसरा व्यक्ति दो बोतल पीकर चला गया।···

माधवी लौट आयी। नशे में मेरे दोस्त ने उसे अपने पास बिठा लिया। फिर मेरी ओर इशारा करके कहा :

"देख! मेरे साथी ने पी नहीं।"

"नहीं क्या?"

उसने इस ढंग से पूछा मानो दवा पीने को हिचकनेवाले बच्चे से माँ पूछ रही हो।

"पियेंगे नहीं क्या?"

मैं कुछ बोला नहीं। उसने एक प्याला भरकर उसे मेरे होंठों में लगाया। अकड़कर मैं थोड़ा पीछे हट गया। वह दूसरे हाथ से मेरा सिर प्याले के पास ले आयी। आखिर सांस बन्द करके मैं एक घूंट पी गया। आज भी सोचता हूँ कि किस दम पर ऐसा हुआ। वह कुछ बड़बड़ायी। मैं एक घूंट और पी गया। मैंने वह प्याला पूरा पी लिया।

उस समय पड़ोस की ताड़ीखाने वाली और उस अधेड़ औरत के बीच कोई झगड़ा चल रहा था।

हमारे कमरे में मेरा दोस्त और माधवी संलाप कर रहे थे। कैसा मजेदार संभाषण! वह उसकी गोद में बैठी थी। एक प्याला ताड़ी लेकर, वे दोनों इस क्रम से पी रहे थे कि एक घूंट वह और फिर एक घूंट दोस्त।

"माधवी!" एक चिल्लाहट।

वह लपककर खड़ी हो गयी। मेरा दोस्त उसे जाने नहीं दे रहा था। दोनों में मानो कुश्ती चल रही थी। आखिर वह चली गयी। साथ एक बोतल भी ले गयी, जो अभी पियी नहीं थी। मैंने दोस्त से पूछा :

"क्या-क्या चाहिए ?"

"क्या-क्या है ?"

"पका हुआ कन्द, मछली, मांस—सब है।"

"तुम्हें जो पसन्द हो, उसे ले आओ।"

"तो कन्द, मछली और चार बोतल ताड़ी। ठीक ?"

"दो बोतल, बस।"

"ना, ना, फिर आये क्यों हो ?"

वह मेरे दोस्त के कपोल पर हाथ सहलाकर चली गयी। मैंने कहा :

"तो, तुम्हें भी पीनी होगी।"

वह गयी। जल्दी ही कुछ चीजें और तीन बोतल ताड़ी लेकर वह लौट आयी।

मेरा हृदय, जो ढुलमुल हो रहा था, अब शान्त हो गया। एक पल···नही, मुझे नही चाहिए ! मेरा मन बदल गया।

उसने दो प्यालो मे एक बोतल ताड़ी उँडेल दी। और, यह कहकर चली गयी—"अभी आ जाऊँगी।"

मेरा दोस्त सब कुछ खा-पी रहा था। उसके गले से ताड़ी उतर गयी तो 'गड़प' की आवाज आयी। उसने मुझसे पीने का आग्रह किया।

नही, मैं नही पीता। नहीं पिऊँगा। अब तक उसे वर्जित रखा था। मुझे यह जानना था कि ताड़ीखाना कैसा होता है। मनुष्य को मनुष्य पर से विश्वास उठ जाता है। स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। कुछ भी करने का दुस्साहसी बन जाता है। हत्या, छल-कपट, धोखा, व्यभिचार—सब नशे के कारण हो जाते है।

मनुष्य को मनुष्यत्वहीन बना देता है। मैं कैसी गन्दी जगह से होकर यहाँ आया था ! यहाँ खड़ा भी कितने गन्दे स्थान पर हूँ !

दोस्त कन्द के टुकड़े मछली मिलाकर चाव से खाने लगा। जल्दी-जल्दी ताड़ी पीता है। हाय ! यह कितना गिर गया ! मैंने अपने माँ-बाप की बात याद की कि अच्छे लोगो से ही दोस्ती जोड़ना चाहिए। इसकी दोस्ती ठीक नही। कितने चाव से खाता-पीता है ! कैसा आराम है ! जीभ से मूँछ सहलाता है। नही, आगे इससे दोस्ती ठीक नही रहेगी। इससे दोस्ती न होती तो मैं इधर के लिए न निकलता। उसे देखते हुए मुझे लगा कि बोतल से उसका सिर तोड़ दूँ और यहाँ से भाग निकलूँ। पर मैंने ऐसा नही किया।··· वह फिर ताड़ी ले लेता है···मुझे किसी प्रकार यहाँ से हट जाना चाहिए।

मैं खड़ा कहाँ हूँ ? ताड़ीखाने मे ! क्या मेरे माँ-बाप इसे जानते हैं ? हाय ! उनकी सभी आशाओ पर पानी फिर गया। उन्हे मुझ पर गर्व···मुझे अपने पर गर्व···मैं भी पियक्कड़ हो गया हूँ। पी नहीं; तो भी मुझे शराब से लगाव है।

बँटवारा[1]

केशवन नायर अट्यक्काट्टु घर की मरम्मत कराने जा रहा है। अट्यक्काट्टु एक पुराना घराना है। पहले जमीन-जायदाद बहुत थी। सब चली गयी। जो बच गई थी उसका भी बँटवरा हो गया। अट्यक्काट्टु घर और अहाता केशवन नायर की माताजी की शाखा को मिला। माँ भी चल बसी। अब तो वह सम्पत्ति केशवन नायर, उसकी बहन चिन्नुअम्मा और चिन्नुअम्मा के दो बेटों की है।

केशवन नायर धन्धे से व्यापारी है। छोटी उम्र में मेत पर छोटी-मोटी चीजों का सौदा शुरू किया था। तब उसके पिताजी थे। धीरे-धीरे व्यापारी हो गया। अब तो काफी अच्छा व्यापार चलता है। उसके पास पैसा भी है। सम्पन्न होता जा रहा है। इतनी उम्र में उसने बहुत कुछ कर डाला है। माँ-बाप की मृत्यु के बाद की रस्में, चिन्नुअम्मा की शादी, अहाते-भर नारियल के पेड़ लगाकर उसकी देख-भाल—सब तो किया। आज भी बहन और उसके बच्चों का खर्च वही वहन करता है। (चिन्नुअम्मा के पति पद्मनाभन् नायर के पास कोई खास काम नहीं।) अलावा इसके कुछ जमीन खरीदकर वहाँ घर बनवाया। केशवन नायर वहीं रहता है। कुछ खेती की जमीन भी है। केशवन नायर के तीन बेटे हैं। बड़ा ही लोकप्रिय व्यक्ति है वह उस इलाके का।

अट्यक्काट्टु घर पुराने ढँग का बना हुआ है। मकान बहुत पुराना हो गया है। उसकी मरम्मत करना चाहता था नायर। बढ़ई ने आकर मकान को देखा-परखा। उस पर नये सिरे से कुछ करने की असमर्थता उसने व्यक्त की। शहतीर और लकड़ी—सब पुराना पड़ गया। मुश्किल से खाना बचाया जा सकता है। आखिर वर्तमान

---

१. भागम्

"वह बोतल क्यों ले गयी है ?"

"मैं ने उसे दे दी। उसे ताडीखाने मे देकर वह उसका पैसा ले लेगी।"

पीछे के दरवाज़े से एक बडी बोतल लिये कोई आया। वह मेरे पड़ोस के एक बड़े अफ़सर का नोकर था। तभी अधेड़ औरत को माधवी से कहते सुना, "साहब का आदमी आया है री!"

मेरे दोस्त को गाने का शौक हो आया। मुझे भाषण देने का भी। जो भी हो, हमारी आवाज़ ज़ोर पकडने लगी। तब तक वह दरवाजे पर प्रकट हो गयी।

"बड़ी देर से बैठे हो। आइएगा।"

× × ×

बाहर आया तो मैंने अपना अँगोछा सिर पर बाँध लिया। मेरी आवाज़ उठ गयी। मुझे एक सिगरट पीने की इच्छा हुई। मेरे दोस्त के पास एक पैसा भी नहीं था। वह कहने लगा, "सात रुपये थे। मैंने उसे दे दिये।"

मैंने कहा, "जाने दे। वह लेकर खा लेगी।"

मेरी विचार-शक्ति ज़ोर पकड गयी। मैंने पूछा, "यह ताड़ी पीने मे क्या हर्ज है? हम अपना पैसा देकर पीते हैं। इससे किसका हर्ज है?"

मेरे दोस्त ने 'शाबाश' कहा। उसकी भी एक युक्ति थी। क्या किसी की योग्यता का निर्णय उसके खाने की चीज़ों से होता है? वैसा हो तो सवेरे-सवेरे कॉफ़ीपीनेवाला भी अयोग्य है।"

वह युक्ति मुझे पसन्द आयी।

उस रात को रिक्शावाले ने अपनी बीवी को मारा। मेरे कमरे के बरामदे पर वह आदमी घोड़े बेचकर सो रहा था, जिसने ताड़ीखाने से पी थी। कैसी सुखद नींद! अफ़सर के घर पर ठहाके और शोर। मैं भी ज़ोर से गाने लगा।

"आज के जमाने में बड़ा मकान बनवाना गलत होगा। यह बँटवारे का जमाना है। पैसा खर्च करके मकान बनाये तो क्या होगा? इसी घर की बात लो। चिन्नु, दो बेटे और केशव। बँटवारे के समय मकान का क्या होगा? बँटवारे के लिए यही अहाता तो है। मकान बाँटा नहीं जाता। तब? बड़ा मकान बनाना ठीक न होगा। चार हजार रुपया खर्च करके चार मकान बना लो। चार लोगों को घर हो गया।"

चिन्नुअम्मा अन्दर से कुछ बड़बड़ा रही थी: "हमारी खुशी में यह बुड्ढा जलता है। उसकी कुढ़न तो देखो!"

गोविन्द भैया किट्टुमामा से सहमत हो गये।

चिन्नुअम्मा मन-ही-मन खीझने लगी। मगर वह सोचने लगी—किट्टुमामा बताते हैं कि पाँच हजार रुपये खर्च करके मकान न बनवाएँ। बड़ा मकान बनवाने से फायदा ही क्या है? आमदनी क्या है? सिर्फ घाटा। अगर खाने के लिए कुछ है, तो कहीं भी सोया जा सकता है।...सचमुच अट्टयक्काट्टु बड़ा मकान बनने से किट्टुमामा जलते हैं।

आखिर किट्टुमामा ने पूछा, "क्या कहते हो केशव? बड़ा मकान बनाने का ही निश्चय किया है क्या?"

चिन्नुअम्मा भाई का जवाब सुनने साँस रोके खड़ी रही।

केशवन नायर ने कहा, "माताजी की बड़ी इच्छा थी कि यहाँ एक बड़ा घर बनवाया जाय। मैंने भी सोचा था। रही बँटवारे के समय की बात। मामा, उसे छोड़िए, हम दोनों ही हैं।"

चिन्नुअम्मा को यह उत्तर बहुत भाया। किट्टुमामा को भी सही जवाब मिल गया। पर मामा ने छोड़ा नहीं। "उस पर विश्वास मत करो बेटा, अभी तुम भाई-बहन के बीच प्यार है। पर इसके बदलने और शहतीर खोलकर बाँटने में देर नहीं लगती।" किट्टुमामा ने जो कहा, वह दुनिया का स्वभाव है। मगर केशवन नायर ने निश्चय कर लिया था।

अगले दिन ही केशवन नायर लकड़ी लेने के लिए चला गया। उस शाम खाना खाते समय उससे उसकी पत्नी ने पूछा: "लकड़ी के लिए कितना रुपया लगेगा?"

केशवन नायर को लगा कि उसका स्वर कुछ अजीब-सा है। उसने सिर उठाकर क्रोध से पूछा, "उँ, जानकर क्या करेगी?"

कार्तायनीअम्मा चुप हो रही। अपना सवाल पति को पसन्द नहीं आया। फिर भी उसने निश्चय किया कि इस विषय में सिर झुका लेना ठीक नहीं होगा। उस रोज़ किट्टुमामा वहाँ आये थे। वे बोले थे कि कुल मिलाकर पाँच हज़ार रुपया खर्च होगा। पाँच हजार! पूरा केशवन नायर को ही खर्च करना होगा।

मकान तोड़कर नया घर (रसोईघर और कमरा सहित) बनाने का निश्चय किया। मामूली ढंग से, बस।

स्थान देखने बढ़ई आया। पड़ोस के किट्टुमामा और गोविन्द भैया को भी बुलाया था। वे पुराने आदमी हैं। वास्तुकला भी थोड़ी-बहुत जानते है।

योजना सुन लेने पर किट्टुमामा ने कहा :

"सब ठीक है। केशव, मकान का स्थान बढ़िया है। अच्छा घर बनेगा।"

बढई सन्तुष्ट हो गया। उसने बताया, "इतने अच्छे स्थान पर इस गाँव में कोई दूसरा घर नही होगा।"

गोविन्द भैया ने पूछा, "कुल कितना रुपया लग जाएगा।"

बढई नही बता सका यह। मकान बनाने की बात ही ऐसी है। "कहा जाता है कि हम लोग कम ही बता देते हैं।"

किट्टुमामा ने उसे पूरा किया : "तुम लोग आओगे तो दिवाला निकल जाएगा। सौ बताओगे तो पाँच सौ खर्च होगा। पूरा तो किसी भी प्रकार करना होगा न!"

केशवन नायर को खर्च का लगभग सही चित्र मिलना चाहिए। बढई ने कहा कि चूंकि सामग्री इसी मकान की है ही, अत. तीन हजार रुपये काफी होंगे।

गोविन्द भैया ने कहा, "तो चार हजार रख ले।"

किट्टुमामा भी सहमत हो गये। उन्होंने केशवन नायर से पूछा, "जानते हो केशव, यह एक पुराना घराना है।"

"जी हाँ।" केशवन नायर ने कहा।

"मैंने इसलिए पूछा कि जब घर की मरम्मत हो, तब सिर्फ घर के मकान की मरम्मत काफी नही, कुटुम्ब-देवता, गन्धर्व और नागदेवता के मन्दिरों की भी मरम्मत हो जानी चाहिए। तभी ऐश्वर्य होगा।"

चिन्नुअम्मा को, जो यह सब सुन रही थी, यह बात अच्छी लगी। गोविन्द भैया ने किट्टुमामा का समर्थन किया :

"मन्दिरों की मरम्मत किये बिना सिर्फ मकान की मरम्मत करना ठीक भी नही है।"

किट्टुमामा ने सहमति सूचक सिर हिलाय। केशवन नायर के मन में उसकी भी योजना थी। तब उन सत्कर्मों के लिए पाँच हजार और लगेगा।

थोड़ा सोचने के बाद, किट्टुमामा हँस दिये।

गोविन्द भैया ने पूछा : "किट्टुमामा हँस क्यों दिये?"

किट्टुमामा एक सच्चाई याद कर हँस दिये थे। जमाने की सच्चाई। अट्टवक्काट्टु घर के सुकृत के कारण ही यह मरम्मत हो जाती। फिर भी मामा को कुछ और बातें भी कहनी थी।

लोग मेरी हँसी उड़ा रहे थे। मैं उनके सामने जिन्दा-मुर्दा हो गया था।"

पद्मनाभन् नायर के मन को ठेस लगी थी। पर चिन्नुअम्मा को सन्देह था कि इसे इतना गम्भीर क्यों लिया जा रहा है।

उसने किसी मध्यस्थ के समान कहा, "भैया ने जान-बूझकर तो नहीं किया। उनका चरित्र वैसा नहीं। यह सोचकर नहीं बुलाया कि आपको कष्ट क्यों दें। एटवा जाकर मारा-मारा न फिरना पड़े, यह सोचा था। भैया भोले हैं। मन में कुछ नहीं रखते।"

पर पद्मनाभन् नायर को यह मान्य नहीं। वह कुछ नहीं बोला। चिन्नुअम्मा ने आगे कहा, "इसे मन में न रखिएगा। भैया तो हमारे लिए कष्ट उठा रहे हैं।"

तब पद्मनाभन् नायर ने कहा, "तू चुप रह। तेरे कहने से लगता है कि यह मुझ पर उपकार है।"

चिन्नुअम्मा सन्न रह गयी। पद्मनाभन् नायर ने आगे कहा, "यह मत सोच कि मुफ्त में हो रहा है। किसी का सौजन्य नहीं।"

"यह आप क्या कह रहे हैं? भैया का प्यार न होता तो हम जीते कैसे? यहाँ क्या कमी है? कौन खर्च करता है? अब पाँच हजार रुपये का जो खर्च हो, वह? कुछ पता नहीं है, तो बोलिए मत।"

पद्मनाभन् नायर को हँसी आ गई। सिर्फ एक वाक्य कहकर उसने बात खतम की, "यह तो किसी का सौजन्य नहीं।"

चिन्नुअम्मा को उसका रुख जरा भी पसन्द न आया। "मुझे कुछ सुनना नहीं। मेरे एक ही भाई है। वह मेरे बाप, मामा, भैया, दीदी, छोटी बहन सब हैं। अब भी सभी जरूरी चीजें देता रहा है। मुझे अपना भैया और भैया को सिर्फ मैं ही हूँ।"

पद्मनाभन् नायर ठहाका मारकर हँस पड़ा। वह दृश्य यों खतम हो गया।

× × ×

घर बनाने का काम शुरू हो गया। पहला काम लकड़ी छीलने का था। नींव पत्थर की बनानी थी। पद्मनाभन् नायर चूँकि पूरब का आदमी था, इसलिए पत्थर लाने का काम उसे सुपुर्द कर दिया। पैसा भी दिया।

कार्तायनीअम्मा बेचैन हो उठी। हमेशा नाराज बनी रहती। घर पर अन-बन। वह जिद करने लगी कि उसे मायके जाना है। उसके सभी गहने गिरवी रखे थे। घर पर धान था। अब तो धान का मूल्य घट गया है। कुछ दिन बाद ही बढ़ेगा। तब धान बेचकर, गिरवी के गहने छुड़ा लेंगे। कई बार वह पति से पूछने को हुई कि लकड़ी खरीदने और पत्थर लाने को रुपये हैं? पर पूछा नहीं।

उस दिन पड़ोस की नानी सुपारी के टुकड़े के लिए वहाँ आयी। वह हमेशा आया करती थी। नानी ने पूछा :

थोड़ी देर बाद कार्तायनीअम्मा ने उलाहना-भरे स्वर मे कहा, "मुझे कुछ नही जानना है। यूँ ही पूछा था। लेकिन मुझे खाने क्यो दौडते हो तुम ?" क्षण-भर बाद वह फिर बोली, "पर···"

आवाज़ ऊँची करके केशवन नायर ने पूछा, "पर···क्या ?"

कार्तायनीअम्मा का मन भर आया। एक वाक्य अचानक उसके मुँह से निकला, "दो बेटे हो गए। पता नही आगे और कितने हो जाएँ ?"

केशवन नायर पत्नी का मन भाँप गया। उसने कडी चेतावनी दी, "सयत रह। इन बातों मे दखल मत दे। अब तक यह आदत नही थी। पता नही कहाँ से आ गयी ? हाँ।" उसने जारी रखा, "मेरे एक ही हमजोली है। अब कोई नही होगी। इसलिए उसकी बात न कर।"

कार्तायनीअम्मा ने उलाहाना दिया: "बात करने-कराने मै नही आऊँगी। हम बेपनाह हो जायेंगे।"

केशवन नायर को जमकर क्रोध आ गया, लेकिन उसने किसी प्रकार अपने को संयत बनाये रखा।

इसी समय भट्यकाट्टु घर पर चिन्नुअम्मा पद्मनाभन् नायर को रात का खाना परोस रही थी। चिन्नु कुछ अधिक ही खुश थी। उसने कहा, "भैया जाकर लकडी ले आये। चार लकडियाँ! बडी-बड़ी—एक जैसी। नहर पर पड़ी है। देखी क्या ?"

पद्मनाभन् नायर थोड़ा चिढा हुआ था। कुछ बोले बिना खाना खा रहा था। तभी चिन्नुअम्मा ने यो कहा था। उसे क्रोध आ गया। उसने कहा:

"तो मैं क्या करूं ?"

चिन्नुअम्मा दंग रह गयी। इस अच्छी बात पर क्रोध क्यो आता है ? वह समझ नही पायी। उसने पूछा:

"यह क्या आदत है ? काटने क्यों दौड़ते हो ?"

पद्मनाभन् नायर कुछ बोला नही। चिन्नुअम्मा ने थोडा-सा चावल और परोसते हुए पूछा, "भैया क्या हमारे लिए मकान नही बनाते ? तो उन पर इतने कुढ़ते क्यों हो ?"

पद्मनाभन् नायर को शिकायत थी, जो सही ही थी। उस दिन सबेरे केशवन नायर लकड़ी खरीदने एटत्वा गया था। जाते समय पद्मनाभन् नायर मन्दिर पर खड़ा था। उससे कुछ भी बोला नही। कृष्णन नायर को साथ ले गया था। पद्मनाभन् नायर ने पत्नी से कहा:

"मैं भी तो एक आदमी हूँ। कृष्णन नायर से ज्यादा इस विषय मे मुझे जानकारी है। कई लोगों ने मुझसे पूछा—लकड़ी खरीदने ख़ुद क्यो नही गये ? कुछ

कार्तायनी अम्मा कुछ सोचने लगी। वह बोली, "ठीक है, लगता है इनकी मति मारी गयी है।"

नानी ने थोड़ी घबराहट से कहा, "एक बात और, किसी से कहना नहीं। लड़ाई-झगड़ा न होने देना।"

कार्तायनी अम्मा ने वचन दिया।

चार-पाँच दिन बाद, नानी अपनी बड़ी बेटी के बच्चे के लिए नारियल का तेल बनाने कोई जड़ी-बूटी लेने अट्टयक्काट्टु घर गयी थी। शाम को ही लौट आयी थी।

पद्मनाभन् नायर द्वारा मँगाये गये पत्थर के टुकड़े बड़ी नावों में ले आए गये। कुल जितने चाहिए थे उतने मिल गये।

नानी के जड़ी-बूटी की खोज में जाने के चौथे दिन, केशवन नायर के यहाँ एक बड़ी अनबन हो गयी। नायर दुकान बन्द करके घर लौटा तो, कार्तायनी अम्मा खड़ी-खड़ी रो रही थी। उसे उसी दम मायके पहुँचा दें। नायर दंग रह गया कि यह क्या चला है।

"अरी, बात क्या है बता तो!"

कार्तायनी अम्मा का दुःख और क्रोध दबाये नहीं दब रहा था। वह बोली, "तुम्हारी बहन की गाली सुनने मुझे यहाँ नहीं रहना है।"

"उसने क्या किया?" केशवन नायर ने पूछा।

"अगर मैं बताऊँ, तो विश्वास करेंगे?"

उस रात उसे बेचैनी थी। अगले दिन सुबह वह अट्टयक्काट्टु घर गया। बहन को डाँटने गया था। चिन्नु अम्मा को बाहर बुलाया और उससे कहा :

"तेरी ज़बान तेज चलने लगी है। काट दूँगा मैं उसे।"

बेचारी चिन्नुअम्मा फूट-फूटकर रोयी। उसको भी कुछ शिकायतें थीं। सिसक-सिसककर वह बोली, "मैंने उनका क्या बिगाड़ा? आज तक मैंने उनके सामने खड़े होकर बात नहीं की है। मुझे डर है। उन्होंने मुझ पर इल्ज़ाम लगाया है कि मैंने भैया को मन्त्र-तन्त्र से वशीभूत कर रखा है।"

फिर वह कुछ भी बोल नहीं पायी। केशवन नायर का दिल पसीज गया। उसने बहन को ढाढस बँधाया।

"तू रो मत, बेवकूफ। तू बोलना बन्द कर दे, बस।"

दोनों औरतों को संतुलित करने में केशवन नायर उस दिन सफल हो गया। फिर भी अनजाने ही एक दरार पड़ गयी।

मकान के लिए ज़रूरी पत्थर उतार दिया गया था। पर किट्टुमामा और मिस्तरी कहते हैं कि पूरा नहीं लाया था। दाम तो ज़्यादा लग गया, पर पत्थर पूरा नहीं मिला। सो पूरा नहीं हुआ निर्माण। किट्टुमामा कहते हैं कि पद्मनाभन्

"तू चेर्तला जानेवाली थी, क्यों नहीं गयी ?"

कार्तायनीअम्मा को अपना दिल खोलने का अवसर मिला :

"कैसे जाऊँ नानीमाँ ? हाथ में थोडा भी सोना नहीं। सब-का-सब गिरवी रखा हुआ है। मुझे शरीर-भर गहने पहनाकर इधर भेजा गया था।"

नानी ने आश्चर्य से पूछा, "हाय, री ! उसे छुड़ाया नहीं अभी तक ? बहुत दिन हो गये।"

कार्तायनी अम्मा ने कहा, "यहाँ कब पैसा होगा ? अब मकान बना रहे हैं—चार कमरों वाला।"

नानी ने कहा कि मकान बनानेवाले को कभी पैसा काफी नहीं होता। फिर भी, आये दिन ऐसा मर्द कहीं नहीं होगा। पहले तो मर्द जो कुछ कमाता था, वो सब भानजों और बहनों के लिए था। बेटे बाहर चले जाते। अब जमाना बदल गया। सब बीबी-बच्चों के लिए कमाते। पर इधर आज भी उलटी चल रही है।

कार्तायनी अम्मा उन बातों में गिर गयी। वह बोली, "मैंने उस दिन पूछा कि इतना खर्च क्या जरूरी है। बस, ये समझो कि मुझे यहाँ से, सौभाग्य से निकाल नहीं दिया।"

नानी को एक सलाह अभी और देनी थी : "बहन और भानजों को प्यार करना चाहिए। पर यह ज़रा ज्यादा हो गया।"

कार्तायनी अम्मा को बातचीत में मजा आ गया। उसने उस भाई के, बहन के प्रति प्यार के, सैकड़ों उदाहरण दिये। ऐसा भी कोई प्यार है ! इस केरल-भर में इतना प्यार कहीं नहीं देखने को मिलेगा।

नानी सब सुनती रही। फिर बोली, "मैं एक बात बताऊँ ! शायद तुम्हें अच्छा न लगे। यही नहीं, तुम दोनों औरतें मिलकर एक हो जाती। फिर भी मैं बताऊँगी।"

कार्तायनी अम्मा ने जिज्ञासा व्यक्त की—बात क्या है ? नानी उसे बताने से हिचकने लगी।

कार्तायनी अम्मा ने हठ की। नानी ने एक इलाज सुझाया : "केशवन को तिरुविषा[1] ले जाकर उलटी कराओ। फिर किसी अच्छे यांत्रिक का सहारा लो।"

कार्तायनी अम्मा की बुद्धि में बात जम गयी। उसने उत्कण्ठा से पूछा, "तो तन्त्र-मन्त्र का परिणाम है क्या, नानी माँ ?"

नानी ने 'हाँ' या 'नहीं' नहीं कहा। पर उनकी यह युक्ति थी कि नहीं तो इस ज़माने में अपने खून से जन्मे बच्चों को भी भूलकर कौन ऐसा करता !

---

१. प्रसिद्ध जगह, जहाँ उलटी का इलाज होता है।

मकान पर खपरैल डाला गया। फिर छत बनायी। अब सफेदी करनी है, फर्श पर सिमेंट डालनी है, दरवाजा लगाना है—इतना काम बाकी था। दरवाज़े बना लिये थे। सब पूरा होने को था। थोड़े दिनों के लिए काम रोक दिया गया। चिन्नु अम्मा छह खम्भोंवाले झोपड़े में रहती थी।

एक दिन किट्टुमामा पद्मनाभन् नायर से मिले। कई दिनों से मामा उससे बात करने की सोच रहे थे।

मामा ने पूछा, "पद्मनाभन्, तुम कैसे आदमी हो?"

"उं, क्या हुआ?"

किट्टुमामा छोड़नेवाले नहीं थे: "तुम्हारे बीवी-बच्चों के लिए दूसरा आदमी पैसा खर्च रहा है, है न?"

पद्मनाभन् नायर परिहास से मुस्कुराया, "कोई मुफ्त में पैसा खर्च नहीं कर रहा है।"

यह उत्तर सुनकर किट्टुमामा को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा, "क्या?"

पद्मनाभन् नायर ने दोहराया, "हाँ, कोई मुफ्त में कुछ नहीं करता।"

मामा ने पूछा, "तुमने कुछ कमाकर दिया है?"

नायर ने तत्काल उत्तर दिया, "गृहस्वामी ने घर की सम्पत्ति से कमाया। माँ-बाप की अपनी सम्पत्ति थी। चिन्नु, बच्चों और केशवन नायर को समान हक है। गृहस्वामी अब नया घर बनवा रहा है।"

नायर ने सीधे खड़े होकर घर बनाने के कानून सम्बन्धी पहलू स्पष्ट कर दिये।

मामा समझ गये। उन्होंने सिर हिलाया। "ओ, तुम कानून का हवाला देते हो, ठीक है।" उन्होंने निन्दा के लहजे में पूछा:

"कितनी सपंत्ति थी घर की?"

पद्मनाभन् नायर ने कहा, "वह मैंने वकीलों से पूछा है।"

थोड़ी देर के लिए किट्टुमामा कुछ बोले नहीं। फिर कहा, "तब तुम्हारी मनोकामना गजब की है। लेकिन बेटे, कोई तुम्हें कुछ देने लगे तो तुम उसे स्वीकार नहीं करोगे, इतना निश्चित है।"

पद्मनाभन् नायर ने कहा, "जो मुझे मिलना है, उसे मैं ले लूँगा।"

तीन-चार दिन और बीते। किट्टुमामा और केशवन नायर बातें कर रहे थे। मामा ने कहा, "आज जो कुछ है, पूरा का पूरा वह माँगेगा।"

केशवन नायर को काटो तो खून नहीं। उसने पूछा,

"तो सब गलत रहा आया है, किट्टुमामा?"

× × ×

मकान बनाने का काम जरा भी आगे नहीं बढ़ा। जैसा खड़ा था, वैसा ही

नायर कम-से-कम डेढ़ सौ रुपया खा गया है। "पद्मनाभन् लाया है। इसलिए यह नहीं कहता है कि उसने पैसा खा लिया है, है न?" मामा ठहाका मारकर हँसे। फिर उन्होंने एक बात और जोड़ दी :

"फिर भी, अगर मैं ठीक नहीं कहूँ, तो मेरा दम घुटता रहेगा। उसने ठीक नहीं किया। उसकी बीबी-बच्चों के लिए घर बन रहा है। उसमें से कमीशन खाना! यह कैसा मर्द है?"

केशवन नायर ने उस पर अधिक ध्यान दिए बिना कहा, "काबिल आदमी नहीं। कोई नौकरी नहीं। जाने दें।"

कहा तो वैसा था, मगर बाद में पत्थर लाने केशवन नायर ही गया था।

मकान बनाने का काम जोरों पर चल रहा था। पर पद्मनाभन् नायर का व्यवहार ऐसा था मानो वह कुछ नहीं जानता हो। सवेरे उठता, नाश्ता करके बाहर चला जाता, दोपहर को आकर खाना खाता, बस। यह विचार नहीं था कि वहाँ काम हो रहा है। एक प्रकार की चिढ़।

चिन्नु अम्मा ने एक रोज पूछा, "ऐसे क्यों रहते हो मानो कुछ जानते-सुनते नहीं हो।"

इस पर पद्मनाभन् नायर बिगड़ गया। "तो क्या मैं इधर कुली का काम करूँ?"

चिन्नु अम्मा ने अनुनय में कहा, "ऐसा कब कहा? इधर बढ़ई, राजगीर, कुली सब काम करते हैं। कौन है काम कराने को? भैया दूकान पर है। हर आदमी अपनी तबियत का काम करता है। कोई देखे तो क्या कहेगा?"

पद्मनाभन् नायर ने साफ कह दिया, "मुझसे नहीं होगा।"

"भैया सब कराते हैं। पैसा न सही, कम-से-कम शारीरिक प्रयत्न तो···"

पद्मनाभन् नायर ने बीच में टोका, "किसी के सौजन्य से पैसा रही खर्च करते।"

यह सोचकर कि बात बढ़ न जाय, चिन्नुअम्मा शान्त रही। पर पति की बात उसकी समझ में नहीं आयी।

पद्मनाभन् नायर का यह रवैया कि—मैं कुछ जानता नहीं, मुझे कुछ पता नहीं—लोगों के बीच चर्चा का विषय बन गयी। कईयों ने कहा कि यह कैसा आदमी है! केशवन नायर किसी बात पर उससे सलाह-मशविरा नहीं करता, इसलिए मुनाफ़ा नहीं मिलता और नाराज होकर चलता है। पर केशवन नायर ने अब तक कुछ नहीं कहा। वह भी बहनोई का व्यवहार देख रहा है। अपने जीवन में हुई गलती समझने लगा। वही पद्मनाभन् नायर को पकड़ ले आया था और शादी करायी थी। चिन्नु अम्मा अपराधिन नहीं। भैया किसी को लाया भर है और शादी करा दी।

गाँववालों ने मिलकर राज़ी कराने की कोशिश की।

बँटवारा हो गया। मकान जो, अभी पूरा नहीं हुआ था, उसके छप्पर और शहतीर तोड़कर एक-चौथाई और तीन-चौथाई के हिसाब से बँटवारा किया गया। मध्यस्थों ने राय दी कि मकान पूरा किसी एक पक्ष में हो। किसी भी रियायत के लिए केशवन नायर तैयार था—पर मकान के विषय में नहीं।

चिन्नुअम्मा के हिस्से की ईंट, छप्पर और लकड़ी के टुकड़े धीरे-धीरे बेच दिये गये। अब वे झोपड़ी-नुमा छोटे घर पर रहते हैं। अट्टयक्काट्टु के अहाते में नारियल के वे पौधे सूखने लगे, जो ताड़ के समान बढ़ गये थे।

अब अहाता गिरवी रखने की बात सोच रहे हैं।

खडा है। पर इसी बीच बहुत कुछ घटित हो गया। चिन्नुअम्मा और कार्तायिनी अम्मा का सामना कई बार हुआ। उन्होंने हद से आगे बातें की। दोनों की जबान चलती थी। आखिर पद्मनाभन् नायर से केशवन नायर की मुठभेड़ हो गयी।

बीच में रहने के लिए जो झोंपड़ी-नुमा घर बनाया था, वह जीर्ण होकर गिर पडा। चिन्नु अम्मा उस मकान मे रहती है, जो अभी पूरा नही हुआ था। केशवन नायर कुछ देता नही। पुरानी चिन्नुअम्मा बदल गयी। केवल हाड-मांस रह गया था। उसके गहने और सब कुछ बेच दिया गया था।

अद्‌यक्काट्टु घर के नारियल के पेड़ों पर छोटे-कच्चे नारियल तक नही थे। तो भी केशवन नायर नारियल उतारने जाता करता। दोनों सालों मे तब झगड़ा हो जाता।

कैसे भाई-बहन थे! अब ऐसे हो गए! लोगो का परिताप।

पद्मनाभन् नायर अपना हिस्सा बेचकर आया है। मुकदमा दायर करनेवाला है। एक रोज उसने अपनी पत्नी को भेजा—मुकदमा और झगडे के बिना बँटवारा हो जाये तो ठीक है।

चिन्नुअम्मा अपने बच्चो सहित केशवन नायर के यहाँ गयी। कार्तायिनी अम्मा ने बच्चो को खाना खिलाने के वास्ते बुलाया। पर उनकी माँ ने जाने न दिया।

भाई-बहन का आमना-सामना हुआ। चिन्नुअम्मा का तर्क था कि आज केशवन नायर के पास जो कुछ संपत्ति है, उसका तीन-चौथाई उसे मिलना चाहिए।

भैया ने पूछा, "यह कहाँ का न्याय है?"

"सब घर की सपत्ति से बनाया है।"

"हट जा, मेरे सामने से।"

"ऐसा नही चलेगा। मैं मुकदमा दायर करने जा रही हूँ। मैं भूखों मर रही हूँ।"

केशवन नायर ने अनजाने ही कह दिया, "उसे घर से निकालकर तू आ जा। तुझे भूखों नही मरना पडेगा।"

तुरन्त चिन्नुअम्मा ने पूछा, "यह क्या कह रहे हो, भैया? दो बच्चे हो गए। अब उनके बाबूजी को घर से निकाल दें?"

केशवन नायर को लगा कि वह गलत कह गया। वह बोला, "तो जा, मुकदमा दायर कर दे।"

अगले दिन केशवन नायर की सारी संपत्ति—बैंक बैलेंस को मिलाकर—पर मुकदमा दायर किया गया।

पूरे दो साल मुकदमा चला। आरोपण-प्रत्यारोपण खूब हुए। पद्मनाभन् नायर ने अरजी दी कि दुकान सहित रिसीवर के आधीन लाया जाय। तब

तेरे सिवा मेरे है ही कौन ? मैं कुछ नहीं कहूँगी।'

"वह लौट आएगा।"

× × ×

किसी भी दुःख मे दिलासा भरी राह देखना आदमी की आदत है। तिनके की नोक मिल जाए, उसे पकड़कर वह आश्वस्त हो जाएगा।

कौन मरा और कौन बचा—इसका कोई पता न होने के कारण हरेक का विश्वास था कि उसके सगे-सम्बन्धी जिन्दा हैं। जीवन आगे रेंगता रहा। गाँव के हर घर मे एक आदमी के कलेवे का अन्न हर रात परोसा रह जाता। नींद मे भी हर आदमी कान खड़े किये रहता। बच्चे आपस मे झगड़ते तो हम बड़े से कहते—"तेरे बाप को आने दे। कहकर तुझे पिटवाऊँगा।" प्रेमिका इन्तजार कर रही होती अपने प्रेमी का। कमल-नाल के धागे से लटकती प्रत्याशा से भरी सन्दिग्धता मे सब कहीं ज़िंदगी की अभिलाषाएँ बनी रहती दिखती थी।

"वह लौट आएगा।" मैं मन्त्रवत् दृढ़ता के साथ कहता रहा। उस दिन जो लोग नहीं मरे थे उनके लौटने के पहले वे मर जाएँगी—मुझे कभी-कभी ऐसा भी लगता। श्रीधर जिन्दा होता तो उस अवधि के परे उनके जीवन का बढ़ जाना वरदान होता। मगर उस अवधि के बाद भी वे जिन्दा रहती और श्रीधर नही आता तो···? फिर भी मैं चाहता था कि उनका ढाढस बना रहे; वे यही विश्वास करें कि वह जरूर लौट आएगा।

उनकी जरूरतें श्रीधर से भी अधिक मुस्तैदी के साथ मैं जुटाता रहा। कहीं भी कोई कमी महसूस न हो जाए। बेटे का अभाव उन्हे न खले। लेकिन मेरी मुस्तैदी उन्हें और दुःखी बनाती थी, उनकी शान्ति भंग करती थी। "नहीं, बेटा" कहकर वे मेरी सेवाओ को आँसू गिराते हुए मना कर देती थी। मगर मैं उतना मुस्तैद न होता तो वे सोचती—"मेरा बेटा जो नही रह गया। इसीलिए तो···।" मैं दुविधा मे था।

माँ अपने बेटे की लापरवाही अथवा अकुशलता के कारण होनेवाली कमियाँ सह लेती। मैंने देख लिया है। श्रीधर के रहते भी उन्हें कई कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती थी। पर तब भी वे सन्तुष्ट थी।

उन्होने मेरे लिए प्रसव की पीड़ा नही सही थी। मैंने जो विश्वास उनमे सुदृढ़ किया था उसने उन वृद्धा की कल्पना मे भविष्य के बारे मे कई सपने बुन दिये। उनको एकान्त मे किन्ही यादो मे खो जाते सुलगते हृदय के साथ मैं देखता रह जाता। इस बीच उनका शरीर थोड़ा पुष्ट हुआ। काश कि क्षीणकाय होकर वे मर जाती! नही, वे मरेंगी नही। 'वह लौट आएगा' के विश्वास के साथ खाया जानेवाला भोजन पचकर शरीर को पुष्ट ही करता। मगर किसलिए? सिर्फ दुविधा की अवधि बढाने के लिए!

वह लौट आएगा[1]

पहली बार मैंने जिनका स्तन-पान किया वे वही थी। उनका बेटा श्रीधर मुझसे सिर्फ़ दो महीने बड़ा था। मैं जो बड़ा हुआ, उनके दूसरे बेटे के रूप में ही हुआ। मैं उनको 'दूसरी माँ' कहता।

श्रीधर और मैं साथ-साथ बड़े हुए। हमने साथ-साथ पढ़ाई शुरू की और साथ-साथ समाप्त भी की। एक ही कारखाने में एक ही दिन हम काम पर तैनात हुए। हमारी मजदूरी भी बराबर थी। मगर मजदूर यूनियन में श्रीधर की अधिक पूछ और दायित्व था।

यूनियन के आह्वान पर एक आम हड़ताल हुई। मजदूरों का एक भारी जुलूस भी निकला। प्रबल जनश्रुति थी कि गोलियाँ चलेंगी। गरीबों और मजदूरों की अभिलाषाओं की उस अभिव्यक्ति का विरोध सरकार की सहायता से करने के लिए पूँजीपति और जमींदार कृतसंकल्प थे।

फिर भी मजदूरों ने जुलूस निकालने की ही ठान ली।

जुलूस के पहले की रात को श्रीधर मुझसे मिला। उसके शब्द आज भी मुझे याद हैं।

"राम, माँ को तुझे सौंपता हूँ। तुझे जुलूस में शरीक नहीं होना है। यह कोई अक्लमन्दी नहीं कि हम दोनों जाएँ।"

अगले दिन गोलियाँ चलीं। बहुत-से लोग मारे गये। कुछ ही बच पाये। आसपास के घर आग का शिकार बने। कई स्त्रियाँ और बच्चे भी मारे गये। गोलियों से पेड़ तक टूटकर गिर गये।

उस दिन हमारे और आसपास के गाँवों के घर आर्तनाद से मुखरित थे। वह रुदन मृतकों को ही लेकर नहीं था। बहुत लोग मरे—इतना ही पता था उन्हें। कौन-कौन मरे और कौन-कौन बचे,

---

१. अवन् तिरिच्चु वरुम्

जननी हैं, सगी माँ हैं। वह जमाना कब आएगा जब कोई मजदूर की माँ बेटे की मौत पर गर्व करके सारा दुःख भीतर ही भीतर झेल ले !

× × ×

उस दिन जो लोग बचकर भूमिगत हुए थे उनमें कोई-कोई कभी-कभार छिपे-छिपे गाँव-घर आने-जाने लगे। दो-तीन से मैं मिला भी। एक ने कहा कि श्रीधर मर गया होगा। जिसने कहा कि वह बच गया था वह यह नहीं बता पाया कि वह अब कहाँ है। उसने देखा नहीं, बल्कि उसका अनुमान था ऐसा।

दिन बीतने के साथ-साथ 'दूसरीमाँ' की बेचैनी और उतावलापन बढ़ता गया।

"वे लोग कब आ पाएँगे, बेटा ?"—दिन में दस बार पूछती वह। उनकी हर बात इसी सवाल में अन्त होती। शुरू में ही मैं कह देता कि वह दिन बहुत दूर है। कितने दिन यह धोखा चल सकता? मगर यह कहे बिना रह भी नहीं सकता था कि वह लौट आएगा। शेष जीवन में भी उनकी राहत बनी रहे !

'वह कब लौट आएगा' का सवाल 'वह अभी हाल नहीं आएगा !' में बदल गया। फिर वे सैकड़ों बातें पूछ लेतीं। सबकी सब श्रीधर के लौट आने की सम्भावना से सम्बद्ध होतीं। उनके सवाल उस गोलीचालन के बाद की राजनीतिक गतिविधियों की हर मंजिल को छूते थे। अपढ़ बुढ़िया ! वे यह सब कैसे जान पायीं ! अनुभव से ही तो राजनीतिक चेतना बढ़ती है।

वे विश्वास करती थीं कि बेटे के लौट आने के पहले वे मर जाएँगी। उसे एक नजर देखकर वे मरना चाहती थीं। असंभव-सा था वह अरमान। मगर मैं निश्चयपूर्वक कुछ कह नहीं पाया।

× × ×

उस कत्ले-आम का फैसला जनता की अदालत में हुआ—वह कत्ले-आम ही था। उस दिन जो लोग भूमिगत हुए थे उनके बाहर आने का वक्त आ गया। मगर उस स्मरणीय दिन वे बीमारी से ग्रस्त हो मृत्यु-शय्या पर पड़ी थीं। कभी-कभार ही उन्हें होश आता था। उस दिन तीन बार मुझे बुलाकर उन्होंने पूछा, "वह आ गया ?"

जो लोग मरे करार दिये गये थे उनके लौट आने की खुशी चारों ओर लहरें ले रही थी। मगर मैं क्या कहता? उन लोगों के लौट आने की बात वे जान नहीं पायी थीं। वे जान न पाएँ ! मेरे ये शब्द कि 'वह लौट आएगा' मूर्त हो मेरे सामने खड़े होकर मेरे चेहरे को घूरते हुए मेरा उपहास कर रहे थे।

कुछ और दिन बीते। जो बचे थे वे सब लौट आये। मगर श्रीधर नहीं आया।

इकट्ठी की जाने लगी थीं। कैसे जान पाता कि वह बच पाया या नही ?

सुना कि यूनियन के सभी सदस्य पकडे जा रहे थे। मेरी हालत भी खतरे में थी। मै तुरन्त घर लौट गया। 'दूसरी माँ' का कैसे सामना करता ?

उस दिन भी कोई बहाना बना पाऊँ तो अगले दिन ? और फिर उसके बाद ? बता दूँ कि वह मर गया है। यदि वह मरा नही, तो ऐसा कहना कितना जघन्य होगा ?

जाने कैसे उन्हें ढाढस बँधाने लायक रूप में मैं हँस पाया। मन को ढीला करके बोल भी सका। श्रीधर खतरे से बाहर है—ऐसा दिखावा करके एक झूठी कहानी मैं रच सका। उसके बचने की वह कहानी मेरी जीभ से बेरोक निकली थी।

मेरी उस वाग्मिता के पार मेरा दिल सुलग रहा था। श्रीधर मरा नही ! जब मैं उसके बच भागने की राह का वर्णन कर रहा था तब मेरे अन्तर्नेत्रों ने उसे छाती पर गोली लगकर लुढकते दो बार देखा। और देखा—उसकी लाश पकड़कर लाशों के ढेर पर डाली जा रही है।

वे पूछने लगी, "वह कहाँ छिपा है ?"

"सो कैसे अब बताऊँ ?"

"साथ कौन-कौन हैं ?"

"बहुत-सारे हैं।"

वे थोड़ी देर चुप रही। उनके चेहरे से लगता था कि उनका विश्वास ढीला हो रहा है। बहुत-से लोग मारे गये। शायद उनका बेटा भी उनमे एक हो ? क्या वे इतनी भाग्यशाली है कि उनका बेटा उनमें न हो। वे रोने लगी। मैंने पूछा :

"क्यों रो रही हो ? क्या उसके बच जाने के कारण ?"

"नहीं, वह बचा है तो कल रात वह मुझसे मिलने क्यो नही आया ? मुझसे मिले बिना मेरा बेटा निकल भागेगा नही। मेरा और कौन है ?"

उस तर्क के आगे मेरी बुद्धि चकरा गयी। एक ही उपाय था। थोडा दिखावटी क्रोध दिखाऊँ, थोड़ी नाराजगी प्रकट करूँ। बेचारी। और कौन आसरा है ? मान जाएँगी। मैंने आवाज ऊँची करके दिखावटी क्रोध और नाराजी के साथ पूछा :

"मुझे थोड़ी शान्ति नही दोगी ?"

उन्होंने मेरे चेहरे पर एक नजर डाली। 'मैं किसी अन्य के लिए बोझ बन गयी हूँ'—ऐसा वे समझती-सी लगी। असहाय जैसे वे बोली—

"नही बेटा, तू क्रोध न कर। मैं तेरी 'दूसरी माँ', यों ही पूछ बैठी। अब

"दीजियो हमें भी प्रेरणा !"

उन्होंने मुस्कुराते हुए आँखें खोली। वैसी दिलेर मुस्कान पहले कहाँ देख पाया था! वे अपने बेटे को देख रही थी।

उन्होने बाँहें फैलाकर हवा को छाती से लगाया। शायद अपनी माँ से गले मिलने के लिए वह वहाँ आकर खड़ा हुआ होगा!

"बेटा श्रीधर, तू आ गया!"

मेरी 'दूसरी माँ' जोर से हँस उठी। और फिर, वे आँखें हमेशा के लिए मुँद गयी।

मैंने उन्हें धोखा दिया। उस धोखे में पड़कर वे सपने देखा करती। वे क्या-क्या देखती, यह मुझे पता था।

एक दिन उन्होंने पूछा, "तो बेटा, श्रीधर आ जाएगा तो क्या वह यूनियन का प्रसेंट[1] बनेगा?"

मैं क्या उत्तर देता? बेटे के आने के बाद की बात थी। मैंने बताया कि वैसा ही होगा। थोड़ी देर कुछ और सोचकर वे फिर बोलीं, "मेरे बच्चे की जिम्मेदारी बढ़ जाएगी। कहीं कोई हड़ताल हो जाएगी तो पुलिस उसे पकड़ ले जाएगी।"

उस स्वगत के साथ-साथ वे कई सपने भी देखती बुनती रहती थीं। श्रीधर का विवाह···बच्चे···और···। मगर उनके सपनों ने मेरे अन्तस् को झुलसा दिया। उनके विचारों को और किसी बात की ओर मोड़ देने की कोशिश करूँ —मगर क्यों? उन्हें कल्पना का आनन्द लूटने दूँ।

उन्होंने जारी रखा—

"उसे जेल मे बन्द कर दें तो भी मुझे खेद नहीं। वह जेल तो भले काम के लिए ही जाता। यूनियन बनने के बाद हमें कितनी राहत मिली है! बेटा, तुझे मालूम नहीं। हमारे बचपन मे तो सिर्फ़ काम करते जाओ, मजदूरी मत माँगो। दे तो ले लो। आज तुम साफ़-सुथरे धोती-कुर्ते पहनते हो। तब वह सब मना था!"

उन्होंने वे पुरानी कहानियाँ सुनायीं। गरीबों के झेले दमन की दारुण कहानियाँ। साफ़-सुथरी धोती पहनने पर मार खाना···सन्तान की मौत पर माँ रोयी तो पड़ोस के जमींदार की शान्ति भंग होने के वास्ते बेदखली···दी गयी मजदूरी आज के लिए नाकाफ़ी है—ऐसा अपने आप से फुसफुसाने वाले क्रान्तिकारी का उस रात गुम हो जाना ··· इस प्रकार की सैकड़ों कहानियाँ।

उन्होंने यों समाप्त किया—"अब भी बेटा, हमें सब कुछ मिलता है? हम काम करें और जमींदार मुनाफ़ा लूटकर खुशियाँ मनाए! उसकी मर्जी पर काम से हटा दिया जाता है आज भी। लाचार हो चार दिन पड जाए तो उसके घर चूल्हा भी न जले।"

मैंने कहा, "अब कितनी बार कितनों के गोलियाँ खाने पर वह सब ठीक हो जाएगा, दूसरीमाँ?"

बुढ़िया ने सहमति मे सिर हिलाया।

"हाँ, हाँ। यह जो मरे वह आगे आनेवालों के लिए ही तो मरे।"

श्रीधर गोली खाकर मर गया है तो वे गर्व ही कर सकती है—ऐसा मैंने कहना चाहा। परन्तु उनकी आँखों से आँखें मिलाकर मैं कह नहीं सका। वे

---

१. प्रेसिडेंट

मालूम नही था। क्या नाम के साथ जन्म होता है? नही, अब्दुल्ला ने बताया। पर अब्दुल्ला को दूसरा सन्देह। वे भूमि पर कैसे आये? उन्हे जन्म दिया था··· किसने···दो औरतो ने···वे औरतें उन्हे जन्म देकर···इस तरह उन भिखारी बच्चों की खोज कुछ दूर तक गयी। आखिर अब्दुल्ला ने कहा, "वे औरतें मर गयी होंगी। नही तो, यही कही होंगी। हम उन्हे नही जानते।"

कृष्णकुमार ने कहा, "वे हैं तो, हमे उन्हे ढूंढ लेना चाहिए। और पूछना है कि क्यों हमें जन्म दिया।"

यही रही उनकी ज्ञान-तृष्णा।

देश-भर मे सभाएं और जुलूस हो रहे थे। रास्तों पर बन्दूक और लाठी लिये पुलिस पहरा दे रही थी। जहां सभा हुई, वहां गोली चली। रात आठ बजे के बाद जाना सम्भव नही। पर, तब भी वे उस लेम्प-पोस्ट के नीचे सोये।

उन भिखारी बच्चों ने समझा कि यहां के सभी कार्य-कलाप अँग्रेजो को देश से निकालने के लिए थे।

एक रात कृष्णकुमार जागा तो अब्दुल्ला पास मे कही नही था। उसने चिल्ला-चिल्लाकर पुकारा। देर तक इंतजार किया। अब्दुल्ला नही आ रहा है! होटल का समय हो रहा है। वह कहां गया?

अब्दुल्ला के लिए उसने एक अलग पत्तल मे गोश्त के टुकड़े और भात जोड़-कर रखा। उसके बाद ही उसने खाया था। पता नही, दोस्त कब तक आएगा! आ जाता तो समय बीत जाता और कुछ भी खाने को रह न जाता तो···

तीन कुत्तो से उसे अकेले लड़ना पड़ा। उसकी रुलाई फूट पड़ी। वे जानवर यह जानकर कि वह अकेला है, भौंकते हैं। उसकी ओर झपटते हैं। एक बार अब्दुल्ला के लिए रखी गयी पत्तल कुत्ते दूर तक ले गये। उस छीना-झपटी मे एक कुत्ते ने उसे काट लिया। सौभाग्य से सिर्फ हड्डी का एक टुकड़ा ही छिन पाया था।

शाम को अब्दुल्ला कही से दिखाई पड़ा। उससे बहुत-कुछ कहना था। कैसा उद्वेग! कृष्णकुमार ने पूछा कि कहां था। उसकी आवाज मे क्रोध और खुशी दोनों थी। पर उसका जवाब देने की जल्दी नही थी अब्दुल्ला को। उसने हाँफते हुए कहा, "उस मोड पर जो बगला है न, उसके मालिक का नाम भी अब्दुल्ला है।"

कृष्णकुमार के हाथ झटकने से मक्खियाँ उड़ गयीं।

अब्दुल्ला ने अभी पत्तल नही देखी थी। कितनी देर से कृष्णकुमार मक्खियाँ भगा रहा था। उसने पूछा, "तूने कुछ खाया?"

"नहीं, भूख लगी है।" अब्दुल्ला बैठकर खाने लगा। आवेश से भरकर उसने कहा:

"उस मालिक का भाषण था। हमारा, मुसलमानों का अलग देश बननेवाला

उनकी हालत गम्भीर हो गयी। मुझे कोई संन्देह नहीं था कि वे बिस्तर पर से कभी नही उठेंगी। मेरी प्रार्थना यह थी कि वह सवाल दुहराने के लिए वे बीच-बीच मे होश में न आ जाएँ! एक बार और वे पूछती तो मैं कह जाता कि वह अब लौटकर नही आएगा। वह भारी झूठ अब और मैं दुहरा नहीं सकता।

वे बेहोशी मे बकने लगी। लेकिन यह भी युक्तिपूर्वक। लगता था कि वे किसी को सामने पाकर उससे बहस कर रही हैं। वे बडबडाती—

"ये पच्चीसों पौधे हमने लगाये थे। यह हमारी पुश्तैनी ज़मीन है। यहाँ से हम बेदखल नही होंगे।"

उस 'नहीं' मे कितनी ताकत थी! कितनी दृढता! उनमें वह कहने की ताकत थी। अपने अधिकार की सुदृढ चेतना की देन थी वह ताकत। किसी में भी उस 'नहीं' को बदलने की शक्ति नही थी। घूरकर देखते हुए घृणाभरी आवाज में वे पूछती—

"तुम्हारी ज़मीन? तुम्हे मिली कहाँ से?"

थोड़ी देर बाद वे पुरानी कहानी कहती। बाप-दादों के पीटे जाने की, पुश्तैनी दमन-पीडन की कहानी। वे रोने लगती, क्रोध मे दाँत पीसती। अपने बचपन की अनुभूत घटनाएँ दुहरा रही थी वे।

वह सब हमने सुना और देखा। बेचारी ने इतना सब झेला था। श्रीधर उस परिवार के दमित क्रोध का प्रतीक जो था। उसकी वर्गचेतना और साहस का रहस्य उनकी कही कहानियाँ प्रकट कर रही थी।

एक और घटना। दिन भर की मेहनत के सात पैसे पाकर पति-पत्नी घर आये हैं। वे खर्च के बारे मे आपस मे सलाह ले रहे है। वात्सल्यमयी माँ बेटे से कहती है—"मेरे लाल! आज तुझे माँड छुड़ाकर भात खिलाऊँगी।"

वह भी उस परिवार की कहानी थी।

× × ×

वह दिन शहीदों की स्मृति मे मनाया जा रहा था। सारे गाँव की परिक्रमा में जुलूस निकला। वे मरणासन्न पडी थीं, इसलिए मैं नहीं जा पाया था।

दूर बैंड का शोकमय स्वर मुखरित हुआ। हर शहीद के द्वार पर रुककर वह जुलूस उसके प्रति आदर प्रकट कर रहा था। जुलूस पास आता गया। हमारे पड़ोस के द्वार पर आकर रुक गया। वे—मेरी 'दूसरी माँ'—लोरी गाने लगी—

"सो जा, सो जा, मेरे श्रीधर···"

वह हम लोगों की सहन-शक्ति के परे था। हम सब रो उठे।

जुलूस हमारे द्वार पर आकर रुका। बैण्ड की धुन दिल को पिघला देने वाली थी।

आए दिन अब्दुल्ला को एक बढ़िया धोती मिली। एक-दो बार पैसा भी हाथ लगा। धोती को फाड़कर आधा हिस्सा उसने कृष्णकुमार को दिया। पैसा भी खुद खर्च नहीं किया। अब्दुल्ला अब वैसी बातें नहीं करता, जो वह पहले करता था। कृष्णकुमार उसकी बातों का जवाब देना नहीं चाहता। अब्दुल्ला प्रायः अपने नामधारी अब्दुल्ला साहब और मुसलमानों को अलग से मिलनेवाले देश के बारे में बोलने लगा था। उस देश में भुखमरी नहीं होगी। भिखारी नहीं होंगे। वहाँ अल्ला का राज होगा।

अब्दुल्ला कभी कुछ सोचकर चुप हो जाता, तब कृष्णकुमार को लगता जैसे वह उससे अलग हो रहा है, पराया होता जा रहा है। उसे छोड़कर भी अब्दुल्ला को कुछ सोचने को है। वह अब्दुल्ला साहब को जानता है।

कृष्णकुमार भरी आँखों से उस पीपे से टिक गया। उसे भी याद करने की कई बातें हैं। वह उसका एकान्त है। पहले जैसे अब्दुल्ला से खुलकर व्यवहार करने से कतराने लगा है।

एक दिन अब्दुल्ला साहब का घर देख आया। उसके बारे में उसने सगर्व विवरण दिया। कृष्णकुमार क्रोधित हो उठा, दुःखी भी। "अपने नामधारी ज़मींदार के घर मैं भी गया हूँ।" उसने कहा।

"वह घर इतना अच्छा नहीं हो सकता।" अब्दुल्ला ने कहा।

"कौन कहता? इससे अच्छा है।"

"किसने कहा?"

अब्दुल्ला को ताव आ गया। कृष्णकुमार भी ताव में आ गया। अब्दुल्ला ने कहा :

"तेरा ज़मींदार काफिर है।"

"तेरा साहब म्लेच्छ है।"

अब्दुल्ला उठ खड़ा हुआ। उससे सहा नहीं गया। "पाकिस्तान जिन्दाबाद!"

कृष्णकुमार ने उसकी हँसी उड़ायी। दोनों में झगड़ा हो गया।

× × ×

१६ जून, १९४६—उस दिन भारत की तकदीर लिखी गयी। १५ अगस्त को पाकिस्तान का जन्म होगा। अब्दुल्ला ने वह विशेष खबर कृष्णकुमार को दी: "मैं कराची जा रहा हूँ।"

सुनकर कृष्णकुमार डर गया। बोला, "किसलिए, अब्दुल्ला?"

"वह हमारा देश है।"

"और यह?"

"यह तुम्हारा देश है।"

कराची से

होटल के पिछवाड़े से आम रास्ता उतरकर, परस्पर कन्धे पर हाथ डाले, सड़क से दो भिखारी बच्चे जा रहे थे। रोज उस समय वे दोनों बच्चे जाते दिखाई देते हैं। एक मुसलमान है, दूसरा हिन्दू। दोनों को एक साथ ही देखा जा सकता है। सोते भी साथ-साथ है। रास्ते के मोड़ पर, लेम्प-पोस्ट के नीचे परस्पर गले लगकर सोते है।

एक अज्ञात भिखारी बच्चे को कूड़ा-करकट के बड़े-से पीपे के निकट दूसरा भिखारी दोस्त मिला। पीपे मे मुँह डाल रहे कुत्ते को दूर भगाने मे उसने सहारा दिया था। दोनो के लिए काफी चीजें उस पीपे में थी। यों वे दोनों दोस्त हो गये थे। एक को हड्डी का टुकड़ा मिला, दूसरे को आलू का। दोनों ने उन्हे आम सपत्ति मान ली। एक को भात मिला, तो दूसरे को तरकारी। दोनो मिल गये तो खाने मे मजा आ गया। दोनों को परस्पर मिलानेवाली आम दुश्मन से फिर लड़ाई लड़नी पड़ी। एक कुत्ता जैसे दो कुत्तों को मिला रहा था।

वे साथ-साथ रहे। खाने को खाना है। नीद भी आराम से। फिर चाहिए क्या ?

पहले को दूसरे का साथ है। दूसरे को पहले का। वह कभी न टूटनेवाला रिश्ता था। आदमी को—चाहे वह भिखारी हो, चाहे खूनी—दूसरा साथी चाहिए।

एक दिन मुसलमान भिखारी ने हिन्दू भिखारी से पूछा :

"तुम्हें किसने यह कृष्णकुमार नाम दिया ?"

कृष्णकुमार को इसका पता नही था। "और तुम्हे अब्दुल्ला नाम किसने दिया था ?"

उसे भी पता नही था। देर तक हँसने का विषय जो मिला। कैसे ये नाम आये—कृष्णकुमार जानना चाहता था। अब्दुल्ला को

एक रोज कृष्णकुमार होटल के पिछवाड़े गया तो, पीपे के पास एक विकृत आदमी लेटा हुआ था। सूजा हुआ शरीर। वह अब्दुल्ला था। अब्दुल्ला उठ नहीं पा रहा था।

उसका सिर गोद में लेकर कृष्णकुमार ने उसे चूम लिया। कृष्णकुमार एकदम रो उठा।

अब्दुल्ला मरते समय अपने इकलौते दोस्त के पास आया था। उसके प्राण-पखेरु उसी पीपे से लगकर उड़ जाना जो चाह रहे थे।

है। पाकिस्तान जिन्दाबाद!"

उसका कैसा उत्साह! जुलूस था, मीटिंग थी, सब मे उसने भाग लिया। अब्दुल्ला का उत्साह देखकर कृष्णकुमार का मन ढीला हो गया। अब्दुल्ला उसे साथ लिये बिना कहीं चला गयाथा। किसी-किसी में भाग लिया होगा। कुछ-न-कुछ खाया भी होगा। अब्दुल्ला का प्यार घट रहा है। वह कृष्णकुमार को भूल गया।

कृष्णकुमार ने पूछा। उसका जवाब भी बड़े उत्साह से अब्दुल्ला ने दिया। यह नहीं कि उसने गलती की है। रेलवे-स्टेशन पर कल दोनों लेटे सो रहे थे। तभी कोई जुलूस वहाँ आया। ट्रेन से कोई बड़े आदमी आये थे। उन्हे जुलूस-वालों ने माला पहनायी। फिर ले गये। उसे देखते अब्दुल्ला ने कृष्णकुमार को जगाया, पर वह तो जैसे घोड़े बेचकर सो रहा था। अब्दुल्ला अकेला ही जुलूस के साथ चला गया था।

कृष्णकुमार ने पूछा, "कुछ मिला?"

"भात मिला। बड़ी दावत थी। सकात भी था।"

कृष्णकुमार का मुख फीका पड गया।

"तब मुझसे इतना ही प्यार है। तू मुझे साथ क्यो नही ले गया?"

"वह केवल हम मुसलमानों के लिए था।"

"तब इतनी ही ममता थी?"···कृष्णकुमार की आँखें भर आयी। उसका इस संसार मे सिर्फ एक ही बन्धु है—अब्दुल्ला। वह उसे साथ लिये बिना चला गया और दावत खायी। वहाँ से एक तिल का लड्डू भी नही ले आया!

"मैंने तेरे लिए पत्ते में खाना सँभालकर रखा था। पर तेरा प्यार इतना ही है! फिर भी, ले खा ले।"

अब्दुल्ला को अपनी गलती महसूस हुई। दावत में से कुछ-न-कुछ ले आना था। उसने कहा, "आगे दावत मे जाऊँ तो, जो परोसा जाता है उसका आधा ले आऊँगा।"

कृष्णकुमार ने उत्कण्ठा से पूछा, "तो आगे भी मुझे छोड़कर चल दिया करेगा?"

आगे भी अब्दुल्ला कभी-कभी यों चला जाया करता था। कभी-कभी तो दो-तीन दिन बाद ही लौटता था।

कृष्णकुमार को लगा कि वह इस दुनियाँ मे जैसे अकेला रह गया है। अब्दुल्ला कभी-न-कभी चला जाएगा। फिर कुत्तों से उसे अकेले लड़ना होगा। अकेले सोना पड़ेगा। बोलने के लिए कोई नही होगा।

कृष्णकुमार तब तक पीपे के पास बैठा रहता जब तक अब्दुल्ला लौट नही आता। उधर अब्दुल्ला को उसे छोड़ जाने में कोई दुःख नही था।

बता रहा है कि उसकी खेती सूखी है !

"और क्या ? आप जैसे बड़े किसान जब से आये हैं तब से वक़्त पर सिंचाई को पानी जमा कर पाना मुमकिन है ? आप लोगों को कभी फ़ुर्सत नहीं रहती। आप लोगों की सुविधा के अनुसार ही हम खेती कर पाते हैं।"

होशियार औसेफ़ ने कहा, "केशवमामाजी यों क्यों कहते हैं ? मैंने अपने नौकरों को समझा दिया था कि केशवमामा की सुविधा का ख्याल रखना।"

केशवन नायर ने खीझकर शिकायत की, "वाह ! बढ़िया इन्तज़ाम रहा। मेरे खेतों के सूखकर काले होने के बाद ही थोड़ी-सी सिंचाई हो सकी। मैंने आपके नौकर के पांव पकड़े तो कहने लगा—'हुज़ूर का हुक्म है कि पानी मत देना।' याद रखिए। खेती सत्यवादिनी होती है।"

औसेफ के पास इस अभियोग का उत्तर था, "पड़ोसियों के साथ आप भी बुआई करते तो यह तकलीफ़ उठानी पड़ती ?"

केशवन नायर कुछ नाराज़ हो गया, बोला, "मुझे ये बातें सिखाने की ज़रूरत नहीं है। मैंने खेती कल-परसों शुरू नहीं की है।"

वह थोड़ा और गरम हुआ। बोला, कहीं से थैली-भर रुपया लाकर और ढेर-सी खाद डालकर धान उपजाने से कोई किसान थोड़े ही बन जाता है।"

औसेफ समझ गया कि इशारा उसकी ओर है। उसने कहा, "केशवमामा, नाराज़ क्यों होते हो ?"

"मैं नाराज़ नहीं हूँ। असली बात कह रहा था।"

कुछ दिन बाद इस खेत की मेड़ पर केशवन नायर और औसेफ़ के नौकरों में झड़प हो गई। चारों तरफ़ खेतों में पानी जमा था। सिर्फ़ केशवन नायर के खेत सूखकर फटे पड़े हैं, धान की कलमें काली हो चली थीं। वह दृश्य देख केशवन नायर की छाती फटी जा रही थी। उसने मेड़ में मटा[1] बनाया। औसेफ के नौकरों ने उसे पूर दिया। हाथापाई की नौबत आ गयी। मामला खून-खराबा तक पहुँचते-पहुँचते संयोग से रुक गया। चार दिन बाद देखा तो केशवन नायर के खेत की धान की कलमें पानी में डूबी हुई थीं। कलमों की नोक तक दिखाई नहीं दे रही थी। उस नौकर की कारस्तानी थी यह। औसेफ के खेतों की धान की कलमों के धूप में सूखने की ज़रूरत पड़ी, तो उसने दरार बनाकर केशवन नायर के खेतों में बहा दिया। इतना पानी कैसे सुखाया जाय ? क्या कोई उसे पी जायेगा ? केशवन नायर की धान की कलमें सड़ने लगी थीं।

सभी कह रहे थे कि बड़ी धांधली हो रही है। पर कोई लाभ नहीं। केशवन

१. मटा—कुट्टनाड अंचल की खेती का विशेष अंग। खेत में पानी भरने और निकालने के लिए मटा (नाली या छेद) बनाया जाता है।

कृष्णकुमार फिर कुछ नही बोला। उसका अब कौन है? उसकी याद करने के लिए कोई नहीं रह गया है। पीपे में उसके लिए खाना है। सड़क के किनारे सो भी सकता है। पर···पर···वह 'पर' किसी बड़े भाव को सूचित करता है। अब किसी से बोलना नही है। अपने सुख-दुःख की बात नहीं करनी है। अकेले ही हड्डी का टुकडा तोड़ना होगा।

अब्दुल्ला कराची का वर्णन करने में मशगूल हो गया था।

"मैं भी चलूं, अब्दुल्ला?" आँसुओं से तर कृष्णकुमार ने पूछा।

अब्दुल्ला ने रोका, "नही-नही, वहाँ मुसलमान ही जा सकता है।"

"तब मेरा कौन होगा?" कृष्णकुमार फूट-फूटकर रोने लगा। वह अब्दुल्ला के सीने से जा लगा।

"रोता है मेरा दोस्त! मेरा इंतजार करनेवाला! ठीक तो है, मैं चला जाऊँ, तो उसका कोई नही होगा।" अब्दुल्ला को भी दुःख हुआ। उसने कृष्ण-कुमार की पीठ थपथपायी।

"हम हमेशा ऐसा ही रहेंगे। मैं कराची जाकर, पैसा कमाके लौट आऊँगा। मैं पैसा कमाऊँ तो, वह अपने लिए नही, वह मेरे दोस्त के लिए है। मेरे यार, रो मत!"

अब्दुल्ला कृष्णकुमार के आँसू पोछने लगा।

अगस्त का महीना आ गया। उस भिखारी ने किसी प्रकार एक तुर्की टोपी, कुर्ता और पैजामा प्राप्त कर लिया। अब्दुल्ला को पहले-पहल इस वेश मे देखा तो कृष्णकुमार को लगा कि वह कोई बडा आदमी है, मेरा पुराना दोस्त नही।

लम्बी सीटी बजाती तेज चल रही ट्रेन की खिड़की से अब्दुल्ला सिर बाहर डाल कृष्णकुमार को ही देख रहा था। ट्रेन मुड़कर गायब हो गयी।

कृष्णकुमार की आँखों मे मानो अँधेरा छा गया। फिर आँख खुली तो चारों ओर देखकर डर गया। वह अकेला है। दुनियाँ मे उसका कोई नही है।

१५ अगस्त। पंजाब मे हत्याकाण्ड हो गया। लगा कि, चलो अब्दुल्ला गया तो अच्छा ही हुआ। वरना उस शहर मे हुए दंगों मे वह भी मारा जाता।

पीपे से खाना खाकर, फटा हुआ पैजामा पहने एक व्यक्ति आज भी पूर्व पंजाब के उस शहर में अकेला रहता है। सडक के किनारे सोता है। पता नही, उसको जोश है कि नही! वह बोलता नही। एक कार्य वह नियमित रूप से करता आ रहा है। कराची से ट्रेन आते ही वह प्लेटफार्म पर आ जाता है।

कुछ साल और बीत गये। आज भी कराची-ट्रेन के इंतजार में रोज वह भिखारी खडा रहता है। उस होटल का बुरा हाल हो गया था। उस पीपे पर जंग लग गयी थी, फिर भी वह वही से खाना खाता है।

उस दिन, रात को न जाने किस तरह, केशवन नायर के खेतों का पानी निकल गया। रात को किसी ने मेड़ मे दरार बनाकर पानी निकाल दिया था। पानी चारो तरफ़ के खेतों की ज़मीन मे समा गया, किसी के खेत का कुछ भी नही बिगडा। स्पष्ट था कि पड़ोसियों ने ही यह काम किया था।

दूसरे दिन सवेरे केशवन नायर ने खेत पर जाकर देखा तो सन्न रह गया। पानी निकल जाने और खेत बच जाने से उसे संतोष अनुभव नही हो रहा था। किसने यह अधर्म किया? वह अपराध उसी के सिर पर लगा रहेगा। उसे तो इसकी खबर तक नही थी। वह सोच रहा था कि अगर कोई उससे पूछे तो अपनी बेगुनाही का प्रमाण कैसे देगा? यह बदनामी उसके सिर ही बनी रहेगी कि खेतों मे रात के वक्त दरार बनानेवाला वही पाजी है।

उस सीधे सरल सज्जन ने यह भी नही देखा कि बगलवाले खेतों का कुछ नुकसान हुआ है या नही। एक तरफ़ अपवाद का भय। दूसरी तरफ खेत के बच जाने की राहत। वह घर लौटा। मन-ही-मन वह भयभीत था कि कोई आकर उससे तलब माँगेगा। उसने घरवालों को समझा दिया: किसी के भी पूछने पर कह दें कि केशवन नायर घर पर नही है। इसके बाद वह एक कमरे मे छिपा रहा। कुट्टिमाप्पिला या कुट्टिच्चोवन उसे खोजते हुए आये। पर उनका सामना करने की हिम्मत केशवन नायर में नही थी।

दो दिन ऐसे ही कट गये। तीसरे दिन मुँह-अँधेरे केशवन नायर खेत की तरफ़ गया। देखा—धान की कलमे कुछ-कुछ उभर रही है। उसका खेत बरबाद नही होगा। चार दिन की धूप और उसके बाद थोड़ी-सी सिंचाई कर खाद भी डाल दें तो फसल अच्छी हो जाएगी। बढ़िया रहेगी। आसार ऐसे ही हैं। अब वह किसान खाद के पैसे की चिन्ता मे पड गया। बीज और मजदूरी के मद में अभी उसपर अस्सी परा धान और एक-सौ बीस रुपये का कर्ज है। थोड़ी-सी खाद न डाली जाय तो फसल खराब हो सकती है। पर रुपये कहाँ से? कौन देगा? कोई उपाय नही सूझ रहा था। घर पर चार गायें थी। इसी मे घर का दैनिक निर्वाह होता था। केशवन नायर ने सोचा कि एक गाय को क्यों न बेच दिया जाय? पत्नी इससे सहमत नही थी। उसकी पाली हुई थी वह गाय। केशवन नायर उधेड़-बुन में उलझा रहा। उसके दिमाग मे सिर्फ खाद की चिन्ता थी। और कोई बात ही नही सूझ रही थी।

"धान की कलम के तले कद्र मिला है न केशवमामाजी?"

सवाल सुन केशवन नायर ने मुड़कर देखा। औसेफ़ था। केशवन नायर के दिमाग मे उस अधर्म की बात उठी। रात के समय खेत मे दरार बनाने का अधर्म! कहीं वह अपराध उसका पीछा तो नही कर रहा है? औसेफ़ यों खड़ा है मानो चोरी पकड़ ली हो। इसका जवाब देना ही पड़ेगा। अपनी निर्दोषता

किसान[1]

वह पचास परावाला[2] खेत वैक्कम गाँव के एक सज्जन का है। पिछले चालीस वर्षों से केशवन नायर उसकी खेती कर रहा है। उसके पहले उसका मामा कर रहा था।

पहले पाट्टम (लगान) कम था। अब कुछ बढ़ाया गया है। हर साल मार्च महीने में लगान का धान सुखाकर बोरे में बाँध वैक्कम गाँव पहुँचाना होता है। यह सिलसिला सालों से चला आ रहा है। इस खेत के चारों ओर के खेतों का स्वामित्व और कब्जा इस लम्बी अवधि में कई हाथों से गुजर चुका है। सिर्फ इस खास खेत का किसान व मालिक नहीं बदले। जमीन के मालिक के पास सिर्फ यही एक खेत था। इसका किसान पीढ़ियों से यही पेशा करता आया है। उसके कब्जे में इतनी ही जमीन है।

आठ-दस वर्ष पहले धान जब पाँच या सात रुपये पर बिकता था तब चंगनाशेरी और तिरुवल्ला गाँवों से कई अमीर यहाँ खेती के लिए आये थे। वे अच्छी पूँजी लगाकर पाट्टम पर खेती करते थे; ट्रैक्टर से नयी खाद डालकर वे अच्छी फसल भी काटते। उन्होंने खूब कमाया। अब भी खेती उसी तरह चल रही है। ऐसे एक उद्योगपति कृषक के खेतों से केशवन नायर के खेत घिरे हुए हैं।

एक रोज खेत की मेड़ पर वह बड़ा कृषक औसेफ और केशवन नायर मिले। केशवन नायर के खेत की फसल चारों तरफ के खेतों की फसल से पिछड़ी थी। औसेफ ने कुशल-समाचार पूछा, "धान की कलमें सूखी-सी दीखती हैं। खाद नहीं डाली क्या?"

सवाल केशवन नायर के कलेजे में चुभ गया। पड़ोसी किसान

१. कृषिक्कारन।
२. केरल का एक माप—करीब बारह से ज्यादा लिटर वाला।

उसकी जरूरत नहीं। मैं जन्म से किसान हूँ और मेरा धंधा है खेती। घर पर दो-चार मवेशी भी हैं। उन्हें फूस चाहिए। यह प्रस्ताव नहीं चलेगा, औसेफ़।"

बात आगे बढाये बिना केशवन नायर चुपचाप चला गया। उसे डर था कि बातें बढ़ने पर या तो औसेफ़ से झगड़ा छिड़ जायेगा या फिर औसेफ़ की बात माननी होगी।

केशवन नायर के खेतों में खाद नहीं पड़ी। धान बहुत कम मिला। फसल की कटाई के लिए मजदूर नहीं मिल रहे थे। चारों तरफ़ औसेफ़ के बढ़िया धान के खेत थे। उनकी फसल की कटाई से अच्छी मजदूरी मिलेगी। मजदूर वहाँ जायेंगे या दिन भर मेहनत करके चार किलो धान कमाने केशवन नायर के खेत में? वह तीन-चार दिन किसानों की तलाश में चला-फिरा। धान ज्यादा पक रहा था। आखिर कुट्टिच्चोवन, कुट्टिमाप्पिला और उनके घरवालों ने अपने खेत के मजदूरों के साथ केशवन नायर के घरवालों की मदद की। सबने मिलकर फसल काटी। फूस भी ठीक से कटा नहीं सके। उतनी फूस नहीं रही।

फसल बहुत खराब थी। किश्त का धान भी मुश्किल से मिला। कुट्टि-माप्पिला, कुट्टिच्चोवन और केशवन नायर ने आपस में सलाह-मशविरा किया। एक की राय थी कि किश्त का एक हिस्सा ही अभी चुकाना काफ़ी है। गत वर्ष पूरी किश्त अदा कर चुके। शेष अगले साल दे देंगे।

केशवन नायर को यह स्वीकार नहीं था। "इस खेत के मालिकों के पास यही अकेला खेत है। इतना ही धान उन्हें मिलता है। हमने फसल काटकर लाभ उठाया है। इसलिए पूरी किश्त चुकानी पड़ेगी। जमीन के मालिक के आँसू गिरे तो खेती उजड़ जाएगी।"

कुट्टिच्चोवन ने पूछा, "अगर फसल से किश्त का पूरा धान न मिले तो?"

केशवन नायर के पास इसका जवाब तैयार था, "जो बाकी है, वह खरीद-कर दे देंगे।"

उस दिन शाम को धान वैक्कम ले जाने के लिए बड़ी नाव तैयार हो गई। खेत से मिला पूरा धान चोकर हटाकर इकट्ठा किया। किश्त का धान मापकर और बोरे में भरकर बड़ी नाव में लाद दिया।

खेत की फसल मुश्किल से किश्त के लिए ही पायी। डेढ़ परा धान और फूसी ही बची। बीज, मजदूरी—सबकुछ अपनी जेब से।

केशवन नायर ने किश्त का धान मालिक के घर पहुँचा दिया। मालिक एक वर्माजी थे। वहाँ पहुँचते ही केशवन नायर को वर्माजी के व्यवहार में थोड़ा-सा फ़र्क महसूस हुआ। नियम के विरुद्ध उन्होंने पूछा कि क्या पूरी किश्त लाया है। बीच में यह भी जोड़ा—"सुना था कि अब की बार पूरी किश्त मिलने की उम्मीद नहीं है।"

नायर तीन-चार दिनों तक औसेफ़ से मिलने की कोशिश करता रहा, पर नही मिल सका। उसे कोई उपाय नही सूझ रहा था। और दो दिन पानी जमा रहा तो खेती एकदम बरबाद हो जाएगी। वह पागल-सा हो गया। उसके एक दोस्त कुट्टिच्चोवन से रहा नहीं गया। उसने सुझाव दिया, "क्यों न हम रात को औसेफ़ के खेतों की तरफ दरार बना दें ?"

केशवन नायर को यह मंजूर नही था। उसने कहा, "वह किसान के योग्य काम नही है। रात में खेत की मेड़ पर दरार बनाई जाय ? कोई ईमानदार किसान करेगा? मैं भले ही बरबाद हो जाऊँ, पर गलत काम नहीं करूँगा।"

इस पर दूसरे मित्र कुट्टिमाप्पिला ने कहा, "आजकल जो कुछ हो रहा है वह क्या खेती के योग्य है ? बीच मे पड़े हुए खेतों को पानी न देना और गलत वक़्त पर उन्हे पानी में डूबो देना—इस खेत की बात रहने दो—इस गाँव मे कभी सुना है ?"

क्रोध से कांपता हुआ केशवन नायर बोला, "यह भी कोई किसान है ? इसे कृषक का नैतिक फ़र्ज़ नही मालूम ? कहीं से थैला-भर रुपया लाकर धान पैदा करता है। धान बेचकर पैसा कमाता है। क्या किसान ऐसा होता है ?"

कुट्टिच्चोवन को एक नया तर्क सूझा, "सभी तो कहता हूँ कि रात के वक़्त मेंड़ मे दरार बनाकर पानी निकाल दें। इनमे न कोई नैतिकता है, न शिष्टता। तब हम भी वह रास्ता क्यों न अपनाएँ ?"

केशवन नायर ने साफ़ बताया कि वह यह अधर्म नही कर सकेगा। यह सुनते हुए कुट्टिमाप्पिला ने धीमी आवाज मे कहा, "अच्छा हुआ कि मैंने अपने खेत औसेफ को खेती के लिए सौंप दिये, वरना मेरी भी हालत यही होती।"

कुट्टिच्चोवन ने भी वही बात दोहराई। अब खेतों के उस मोहल्ले में पांच-सौ एकड़ के खेतों के बीच सिर्फ़ केशवन नायर के पांच एकड़ खेत पर ही औसिफ का कब्जा नही रहा है। शेष सारे खेतों की खेती औसेफ़ कर रहा है। एक किसान की हैसियत से केशवन नायर की मदद कोई नही करता, यद्यपि सभी उससे हमदर्दी रखते हैं। दोस्तों का अनुभव सुनकर केशवन नायर ने कहा, "मैं भी उसे खेत सौंप देता। मगर उसके बाद मेरी रोटी का क्या होगा ? कौन-सा धंधा करूँ ? कुट्टिमाप्पिला को हर पारी में चार-पांच सौ नारियल मिलते है। कुट्टिच्चोवन के चारों लड़के कमाने लायक हो चुके हैं। मेरे पास तो सिर्फ यह खेत है। इसकी जुताई-खुदाई से ही पेट पलता है।"

बात सच थी। कोई कुछ नही बोला। केशवन नायर ने बात जारी रखी, "हम इसी खेत पर पीढ़ियों से हल चलाते आये हैं।"

केशवन नायर की बातें जारी थी—"हुजूर, एक बात कहूँ ? मुझे मालूम है कि हुजूर के पास कौन आया है। औसेफ़। मगर हुजूर, वह कोई किसान नहीं है। उसे ज़मीन से ममता नहीं है। ढेर-भर रासायनिक खाद डालकर मिट्टी की पूरी ताकत खींचकर फसल निकालेगा। चार-पाँच वर्ष बीतने पर हुजूर की जमीन परती व बंजर हो जाएगी। घास तक नहीं उगेगी।"

वर्माजी टहलते रहे। उनके मुँह से कोई शब्द नहीं निकल रहा था। केशवन नायर की बातें जारी थी। उसका गला रुँध गया। आँखें भर आयी—"मैं माँ की कोख से इसी खेत पर गिरा था। मेरे बुजुर्गों का पसीना ही इस खेत की ताकत है। मेरे जीवन-भर की ममता सिर्फ़ इस खेत की मिट्टी से है।"

केशवन नायर फूट पड़ा। वह हकला रहा था : "मु···मु···मुझे हुजूर खेत से न हटायें।"

वर्माजी का दिल भी शायद कुछ पसीजा। बोले, "मुझे तो किश्त चाहिए।"

केशवन नायर फूट-फूटकर रो रहा था। रोते-रोते ही उसने कहा, "वह किश्त मैं दूँगा।"

बढ़ाई किश्त पर खेती करने का पट्टा लिखाकर केशवन नायर लौट आया।

पहले फसल कटने के बाद तुरन्त ही खेत की एक बार जुताई होती है। उसकी मजदूरी खलिहान के धान से ही दी जाती है। इस वर्ष फसल की कटाई से धान का दाना तक नहीं बचा है। पिछली जून की खेती के लिए लिया कर्ज चुकाया भी नहीं है। कहीं से कर्ज लेने का भी उपाय नहीं है।

घर लौटने के दूसरे दिन ही केशवन नायर ने जुताई के मजदूरों को बुलाकर काम कराया। सोचा नहीं कि मज़दूरी कैसे देगा। वे मजदूर उस दिन से मजदूरी पाने के लिए केशवन नायर के पीछे पड़ गये। उसे चुकाये बिना आगे क्या जुताये।

खेती बिगड़ गयी। बगलवाले खेतों में हर महीने जुताई चलती थी। सिर्फ केशवन नायर के खेत में जंगली घास खूब उग रही थी।

तब भी औसेफ़ आया। उसने कहा, "मालिक को देय नई किश्त और पचास परा ज्यादा धान मैं आपको दूँगा।" केशवन नायर की आँखें क्रोध से लाल हो गयी। बोला, "नहीं रे! तुम वह इरादा छोड दो। मैं तुम्हें इस खेत का कब्जा नहीं दूँगा।"

बुआई के दिन आये। मेड़ें चुनी जा चुकी। पानी निकाला जा रहा था। पर केशवन नायर के खेत बिना जोते, गोडे और तैयार किये यों ही पड़े थे। बेचारे के पास बीज तक नहीं।

अब वह पत्नी से संघर्ष करने लगा। वह एक गाय को बेचना चाहता था। मगर पत्नी को वह स्वीकार नहीं था। वह बोली, "हम उस गाय के ही बल पर

प्रमाणित करनी ही होगी। फीकी हँसी हँसते हुए केशवन नायर ने कहा, "अपने बड़े मामा की कसम, अपने इस खेत की कसम! मैंने दरार नही बनायी, औसेफ़! मैं किसान हूँ। किसान अधर्म का आचरण नही करेगा।"

औसेफ ने केशवन नायर की घबराहट को पहचान लिया। बोला, "मामाजी, आप कसम क्यों खा रहे हैं? मेंड़ की दरार तो मैंने बनाई थी। उस दिन आते हुए मैंने देखा कि आपके खेतो मे पानी भरा हुआ है। इसलिए दरार बना गया था।

केशवन नायर की जान में जान आयी। उसकी आँखें चमक उठीं।

"सच? सच बताओ। तुम जुग-जुग जिओ बेटा! मैं घबरा रहा था कि जिंदगी-भर यह बदनामी मेरे सिर बनी रहेगी।"

औसेफ ने ज़ोर देकर कहा, "हाँ मामा, मैंने ही किया। आप भले ही मुझसे वैर रखें, क्या मैं ऐसा कर सकता हूँ? आकर मैंने देखा, तो दिल टूटने लगा। मैंने दरार बना दी। सोचा—मेरा धान नष्ट हो जाय, मेरी बला से।"

केशवन नायर को धान के नष्ट होने का दुःख नही था; रंज था बदनामी का।

पूरे खेत पर सरसरी निगाह डालते हुए औसेफ़ बोला, "मुट्ठी पर राख खेत मे बिखेर दें तो धान अच्छा निकल आएगा, मामाजी!"

"मैं भी यही सोच रहा था बबुआ!"

"तो कीजिए न?"

"पैसे चाहिए न? पैसे नही हैं।"

"खेती सुधारने के लिए पैसे तो खर्च करना ही होंगे।"

"ज़माना ही ऐसा है।"

औसेफ ने केशवन नायर से ममता भरे स्वर मे कहा, "मामाजी, एक बात बताऊँ?"

केशवन नायर ने सिर उठाकर औसेफ के चेहरे की तरफ देखा।

"केशवमामाजी इतना कष्ट क्यो उठा रहे हैं? ज़मीन के मालिक को जो किश्त देना है उसके अलावा पचास परा अधिक धान आपको मैं दूँगा। खेत मेरे सुपुर्द कर दीजिए। इस बुढापे में इतनी परेशानी क्यों?"

केशवन नायर के हावभाव एकाएक बदले। उसे गुस्सा आ गया। फिर भी अपने पर काबू रखते हुए बोला, "नही, नही! मुंह धो रखो औसेफ! हम लोग पीढियों से इस खेत में हल चलाते आये है। और किसी को यह कष्ट उठाने की ज़रूरत नहीं।"

"इसमे क्या धरा है? वैक्कमवाले मालिक के किसान मामाजी। मामाजी का किसान मैं!"

मंगलसूत्र[1]

पति के मरते समय पत्नी पूछा करती है—"क्या मुझे छोडकर चले जाओगे ?" बच्चा जब मरने लगता है तब माँ भी यही सवाल दुहराती है। पत्नी के आखिरी साँस लेते समय पति भी शायद यही प्रश्न करता है। हर किसी के मरते समय नजदीकी रिश्ता रखनेवाले लोग यही पूछते है।

लेकिन पति के मरते समय पत्नी जो यह प्रश्न पूछती है उसका महत्त्व कुछ और ही है। वह न माँ का सवाल-सा है, न भाई या दोस्त का। न वह पति का प्रश्न-सा ही है। मौत से सब के जीवन मे एक दरार जरूर आ पडती है। माँ का दुःख गहरा जाता है। उसने कष्ट झेलकर बच्चे को जन्म दिया, प्यार-दुलार से उसे पाला-पोसा है। वह बालक-जीवन माँ का दिया उपहार था। वही अब खो गया। सो, माँ का दुःख उसमे सुरक्षित किसी पवित्र तत्त्व पर लगी हुई चोट है। भाई को इस बात का दुःख रहता है : हम लोग इतने भाई थे, हममे से अमुक चल बसा। पति के मन में पत्नी की की हुई सेवा शुश्रूषा आदि की स्मृति से टीस होती है। और पत्नी की बात ?

पत्नी की हस्ती अलग होती है। आप पूछेंगे कि कौन-सी खासियत है ? वह बहुत सोचने-समझने की चीज है। आदमी और औरत के रिश्ते का—पारिवारिक सम्बन्ध का—आर्थिक ढाँचे का—यही नही, पूरे जीवन की सामाजिक पृष्ठभूमि का इतिहास, परिवर्तन, नियम एव दर्शन—सबकुछ स्मरण करने पर ही उस विशेषता का पता चलेगा। अथवा ब्याही युवती के गले के मंगलसूत्र की ओर देखने के बाद सोच लें, तब भी अनुमान कर सकेंगे।

क्या आपने उस मगलसूत्र को गले से सटकर साँसो की गति के

---

१. ओरु केट्टुतालियुटे कथा।

केशवन नायर ने दो-टूक जवाब दिया, "हुज़ूर ! हम कम-से-कम सौ वर्षों से आपके खेत मे खेती करते आ रहे हैं। क्या कभी बकाया छोड़ा है ?"

वर्माजी चुप।

धान की पूरी किश्त अदा की। एक दाना तक बाकी नही रखा। फिर भी वर्माजी के चेहरे पर खुशी नज़र नही आयी।

हमेशा की तरह केशवन नायर और नाववालो को भोजन कराया गया। भोजन के बाद केशवन नायर जब बिदा लेने चला तब वर्माजी ने कहा, "मुझे एक बात कहनी है।" केशवन नायर ने कहा, "बताइए।"

वर्माजी केशवन नायर की तरफ सीधी नज़र नही डाल रहे थे। वे मौन टहल रहे थे। काफी समय बाद केशवन नायर ने फिर से कहा, "बताइए न ?"

तुरन्त उत्तर मिला, "अधिक किश्त देकर खेती करने एक आदमी तैयार है। काफी सम्पन्न है। केशवन, हमारे खेत की खेती छोड़ देना।"

केशवन नायर पर मानो बिजली गिर पड़ी। उसके मुँह से एक भी शब्द नही निकला।

एक क्षण रुक कर वर्माजी बोले, "बहुत बढ़िया खेत है। तुम लोग सस्ती किश्त पर मौज उड़ा रहे हो। आगे हम यह नही होने देंगे। खेत छोड़ दो।"

केशवन नायर कम्पन से कुछ-कुछ मुक्त हुआ :

"खेत के मालिक आप हैं। फिर भी कुछ बातों का खयाल तो करें।"

"खयाल-ख्याल कुछ नही करना है।"

केशवन नायर के दिमाग मे और एक उपाय सूझा। पूछा, "दूसरे ने कितनी किश्त देने का वादा किया है ?"

"सौ परा धान। अमीर आदमी है। तुम्हारी किश्त अगर बकाया रहे तो वसूल कैसे करें ?"

केशवन नायर ने स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया, "अभी तक कभी क्या बकाया रहा है ?"

थोड़ी देर दोनो चुप। केशवन नायर बोला, "हुज़ूर, बढ़ाई हुई किश्त मैं दूँगा।"

वर्माजी इस पर भी प्रसन्न नही दीख रहे थे। केशवन नायर ने पूछा, "आप क्यो कुछ नही कहते ?"

"जो लायक नही, उन्हे खेत सौंपना आगे ठीक नही रहेगा।"

केशवन नायर को बात अखर गई।

"हुज़ूर को कैसे पता कि मैं लायक नही हूँ। क्या मैंने कभी किश्त बकाया छोड़ी है ?"

जवाब नही।

में ही होगी। वह आत्मा उसे दुःखी देखकर सिसकती-भटकती होगी। वह शायद उत्तर दे देगी।

उन औरतों ने उसके सवालों का जवाब दिया। वे उनका मतलब थोड़ा-बहुत समझती थी।

जब वह पूछती : "अब मेरा कौन है ?" तब वे उत्तर देती कि आदमी कब संसार के आखिरी दिन तक जीता है—आदि-आदि। अन्त मे वे समझाती कि भगवान् हैं। जब वह प्रश्न करती : "मैं क्या करूँ ?" तब वे आश्वासन देती कि जिस ईश्वर ने मुँह दिया है वही खाना भी देगा।

फिर भी वह ऐसे निरुत्तर प्रश्न आखिर कितनी बार पूछ सकती थी ?

× × ×

उस दिन अड़ोस-पड़ोस के घरों में वह युवती ही चर्चा का विषय रही। अल्हड़ जवानी। जवानी के प्रारम्भ में ही पति मिल गया। दोनों एक-दूसरे को बहुत प्यार करते थे। जब दूसरे घरों में पति-पत्नी कभी-कभी या दिन-रात आपस में झगड़ते या हाथापाई पर उतरते तब उस घर में जब-तब हँसी के फव्वारे छूटते थे। पड़ोसी जन उन बालसुलभ उत्साहवाले युवा दम्पतियों की जिन्दगी की उमंगों पर आपस में बात किया करते थे। दोनों एक ही थाली से खा लेते। कभी पत्नी को पति कन्धे पर बिठा लेता, वह शरमा जाती। पति ने किसी दिन पत्नी की मूँछें बनायी···ऐसी कितनी ही घटनाएँ! अब वे सब अच्छी तरह समझ गये कि वह युवती क्यों पूछ रही थी—"मुझे यों ही छोड़कर चले जाओगे ?" आगे उस औरत का कौन है ? वह क्या करे ? उसके किसी मित्र या बन्धु का कोई पता नहीं था। कोई उन्हें पूछने नहीं आता था। जब वह बीमार पड़ा तब भी कोई नहीं आया। न मरने के बाद ही। मगर शादी जरूर हुई थी। उसके गले में मंगलसूत्र जो है।

पड़ोसियों के सामने सवाल उठा कि आगे उसका गुजारा कैसे होगा ? इसका कोई जवाब नहीं था। वह युवक उस शहर में लकड़ी चीरता, छोटी-मोटी मजदूरी कर रोटी कमाता था। अब वह औरत कैसे गुजारा करेगी ? एक ही उत्तर सूझा—"चलेगा।"

सिर्फ एक महिला ने कहा, "अगर उस अनाथ कन्या का ब्याह न हुआ होता तो कैसी हालत रही होती ? वैसे ही आगे भी चलेगा। समझ लेना कि शादी नहीं हुई है।"

सो तो ठीक है। मगर वह मंगल-सूत्र ? क्या उसका कोई मतलब नहीं है ? गले से उस सोने की टुकड़ी को उतार भी दें तब भी मंगलसूत्र वहीं रहेगा। नये पति के आने पर भी उस मंगलसूत्र की संकल्पना नष्ट नहीं होगी। सदियों-सहस्राब्दियों से मंगलसूत्र की महत्ता सुरक्षित है।

जीते हैं। उसे नहीं बेचने दूंगी।"

केशवन नायर की आँखें लाल हो गयीं—"फिर कैसे बोएँगे री ?"

"मत बोइए।"

"किसान हूँ। जरूर बोऊँगा।"

"हुँ, किसान !"

केशवन नायर ने पत्नी की सहमति के बिना ही एक गाय को बेच डाला। आदमी गाय को खरीदकर ले चला। उस औरत ने अपने सिर पर हाथ रखकर आँसू भरी आँखों से सबको शाप दिया : "इस खेती का सर्वनाश हो।"

गाय की बिक्री से बीज और बुआई के पैसे मिले।

यों केशवन नायर ने धान का बीज खरीद लिया। उन्हें छोटी गठरी में बाँधकर पानी में डुबा रखा। दूसरे दिन पानी से बीज बाहर निकाले। तीसरे दिन गठरी खोलकर देखा तो आधे बीजों से भी अंकुए नहीं निकले थे (बीज अंकुरित नहीं हुए थे)। उसी दिन बोना जरूरी था। कुट्टिमाप्पिला ने सुझाव दिया, बो तो डालो। ज़मीन में पड़ने पर अपने आप उग आयेंगे।

लाचारी के कारण वही किया गया।

चारों तरफ के खेतों में धान की कलमें लहलहाती बढ़ रही थीं। केशवन नायर के खेत में जंगली घास खूब उगी। धान की एक कलम तक नहीं थी। लोग कहने लगे कि केशवन नायर की खेती बिगड़ गयी। यही लाभ हुआ।

उस साल की फसल काटी गयी। केशवन नायर के खेत काटने का सवाल ही नहीं उठा। किश्त चुकाने की तारीख बीत गयी। वर्माजी खेत पर आ पहुँचे। केशवन नायर कहीं जा छिपा था। वर्माजी उसे तीन दिनों तक खोजते रहे, पर वह नहीं मिला।

चौथे दिन केशवन नायर वाले खेत में औसेफ़ के मजदूरों ने जुताई का कार्य शुरू कर दिया। वर्माजी मेंड़ पर खड़े थे।

× × ×

दूसरे साल की बोआई हो गयी। हर रोज केशवन नायर खेतवाले किसान की भाँति घर से सवेरे-सवेरे ही चल देता। देखनेवालों को लगता कि कहीं पर उसकी खेती चल रही है। काफी धूप चढ़ने पर ही वह घर लौटता। पिछले चालीस वर्षों की आदत जो ठहरी।

पड़ोसवाले खेतों का धान केशवन नायर को ललकारता-सा लहलहा रहा था। रोज केशवन नायर वहाँ जाता। एक दिन धान की कलमों में कुछ पीलाई दिखाई पड़ी तो केशवन नायर का दिल दुखी हो गया। ढूंढ खोजकर वह औसेफ से खुद जाकर मिला और उसे सूचित किया। यही नहीं, वहीं खड़े होकर पीलाई दूर करने का उपाय भी सुझाया।

है। वह आँसुओं से भीग गया है।

"मैं क्या करूँ ?" उसने पूछा। उसका जवाब उस वातावरण में है, मगर वह शब्द मे प्रकट नही हो रहा था। मन्द पवन, पत्तों का मर्मर, पंछियो की चहक, मानव के सान्त्वना के शब्द—सब मे वह जवाब था; भरा हुआ था।

"दूसरे किसी पुरुष की होकर गृहस्थी चलाना—हाय ! मुझसे नही हो पाएगा।" उसने कहा। मानो उसके प्रश्न का यही उत्तर मिला कि दूसरे के साथ गृहस्थी करनी होगी। उसके मुँह से वे शब्द अचानक निकले थे। जीने के हौसले ने जब इस तथ्य की ओर सकेत किया कि औरत का गौरव किसी की पत्नी होकर रहने मे ही है। तभी शायद उसके मुंह से ये शब्द निकल पड़े। यह मनहारी ससार, भीनी-भीनी हवा, चहचहाती चिड़ियाँ, प्रेमपूर्ण मानव-समाज—सभी ने उसे जीवन के क्षेत्र मे आने का निमन्त्रण दिया। उसके लिए एक ही रास्ता खुला था—किसी की पत्नी हो जाना। उस बेचारी युवती ने कहा—

"अब किसी और की सेवा करूँ ? ना, मुझसे नही हो पाएगा। वह पसन्द नहीं करेगा। मैं नही जानती। मैं हार जाऊंगी।"

गले का मगलसूत्र फडफडा रहा था। जीने का हौसला फिर से उमड़ा। आखिर वह नौजवान थी, उसका जी अभी नही भरा था।

उसने सोचा था कि एक पति क्या-क्या चाहता है। उसे उसकी अनुमति मिलनी चाहिए। दिवगत आत्मा को चाहिए कि उसे दूसरे की पत्नी होने की अनुमति दे।

वह अनुमति कैसे मिले ?

दिवगत पुरुष उस युवती का दुःख सहन नही करेगा। वह चाहता था कि वह हमेशा सुखी रहे। फिर वह उसके रास्ते मे भला क्यों रोड़े अटकाएगा ?

वह लाश अभी वही गल चुकी होगी। पडोसवाले रोज़ की रोटी के लिए फिक्र में हैं। वे उसके पास आठों पहर बैठ नहीं सकते। जब वे खुद दो जून की रोटी नही जुटा पाते तब उसे कहाँ से खिलाते ?

यो एक दिन भूखी रही। मगर उसे भूख महसूस नही हुई।

दूसरे दिन उसने सोचा : कितने दिन भूख को नकारा जा सकता है ? कितने दिन इसी तरह बिताने पड़ेंगे ? मौत तक ? मौत का दिन कब आएगा ?

एक जीव का ध्यान एक जून की रोटी पर जा अटक गया। गला सूख रहा था, पेट मे खलबली मची हुई थी। थोड़ी-सी काँजी···कहाँ से मिले ?

पडोसिनो से माँगे ? वे दे दिया करती हैं। माँगने पर आज दे देंगी। पर कल ? उसका मन सोच मे डूब गया।

उस मज़दूर के घर मे कोई कीमती चीज़ नही थी। मदद माँगने के लिए कोई व्यक्ति नही सूझ रहा था।

साथ हिलते नहीं देखा है ? क्या इस सवाल का मतलब आपकी समझ मे आया कि 'क्या मुझे छोड़कर चले जाओगे ?'

वह पूछ रही थी, "क्या मुझे छोड़कर चले जाओगे ?" उस आदमी का मुंह आधा खुला ही रह गया था, मानो कुछ कहना चाह रहा था। उसकी आंखें अध-खुली थी मानो पत्नी की ओर देख रही थी। मगर आँखो की काली पुतलियाँ अबरक से ढकी-सी थी। वह सूखी लकड़ी-सा चित्त लेटा हुआ था।

वह युवती अपने सवाल के जवाब का इन्तजार कर रही थी—

हाँ, जरूर जवाब मिलेगा—"नही।" वह छाती पीटती रही युवती की तरफ देख रहा था। उस युवती ने अपना सवाल दुहराया।

"हे भगवान् ! क्या सांस बन्द हो गई ?" उसने वह मर्म पहचान लिया। उसने उसे पकड़कर खूब हिलाया। आँखों की पलकें खोली, ओठ खोले। उस शरीर पर वह लुढक पड़ी।

उसे यकीन नही आ रहा था। वह मौत पर विश्वास नही करती थी। कारण यह है कि उसका प्रियतम उसे बहुत चाहता था। वही आदमी अपने हाथ-पाँव, बदन, सिर—सब सही-सलामत रखे लेटा है। तो क्या वह उसका रुदन सुनकर कुछ-न-कुछ बोलेगा ? अगर उसका सिर धड़ से कटकर अलग पडा मिलता तो शायद वह मृत्यु को यथार्थ मान लेती। लेकिन तब भी वह सिर को धड़ से चिपकाने की चेष्टा करती।

उस युवती ने पति का सिर गोद मे रखे हुए अपना सवाल फिर से पूछा। इस बार उसने इस सत्य को स्वीकार किया कि वह मर चुका है।

"अब कौन मेरी देख-रेख करेगा ? अगला सवाल।

"बोलिए न ?"

जवाब पाने की कोशिश।

"तो क्या करूँ ?"

उत्तर नही।

उसने फिर से उसके ओठ खोलकर, पलकें खोलकर जवाब पाने की कोशिश की।

जवाब नही था। उसे उम्मीद थी कि मरने पर भी वह कम-से-कम एक शब्द मे उत्तर अवश्य देगा।

आगे वही चिरसुलभ रुदन-परिदेवन—प्रेम की स्मृति-कथाएँ ! भूखो रहने पर प्रियतम द्वारा डांटने-दुलारने की स्मृतियाँ…।

पड़ोसिनें उसे घेरकर बहुत समझाती रही। उसे सान्त्वना दे रही थी। फिर भी वह बीच-बीच में अपना प्रश्न जोर से दुहराती—"अब मेरा कौन है ?" "मैं क्या करूँ ?" "मैं लुट गई !" प्रश्नो का मतलब ? बिछुड़ी आत्मा उस वातावरण

मत करो। लो न ! इससे मेरे बिछुड़े साथी को राहत मिलेगी।" उसने पैसे आगे बढ़ाये।

उसने नही लिये।

हाथ मे पैसे लिये हुए उसने टूटे दिल से बहुत कुछ कहा, "क्या एक भाई के हाथ से यह नही लोगी ?"

वह फूट-फूटकर रो पड़ी। उसका हाथ अनजाने ही आगे बढ़ गया।

× × ×

उस झोपड़ी मे ढिबरी टिमटिमा रही है। वे बैठे हुए बात कर रहे हैं। पता नही, किस विषय पर बातचीत चल रही है। रात ढलती जा रही है—क्या वह कहती होगी कि इस तरह बातचीत करते रहना उचित नही है ?······नहीं तो कौन-सी इतनी सारी बातें कहने के लिए रखी हैं ?

अचानक बत्ती बुझी। बुझायी गयी थी। किसने बुझाई होगी ? क्यों ? कौन जाने ?

बातचीत जारी है और दबी आवाज में। वह बचने की कोशिश कर रही है। दिल के सच्चे वादे ! टूटे दिल से निकलती कराह—"हाय ! नही ! नही !" सब कुछ घने अँधेरे मे। किसी भी बात को छिपाने मे माहिर अँधेरा !

"वह शरीर अभी गल नही पाया। नही, नही।"

एक थकी-हारी औरत की आवाज है।

उसका मंगलसूत्र अब जितना फड़फड़ा रहा था उतना पहले कभी नही फड़फड़ाया होगा। मगर दिखाई नहीं देता।

वे फिर से बातें कर रहे हैं।

उसे मालूम है कि वह अविवाहित था। पति का साथी था।

उस आदमी ने कहा होगा—मेरे दोस्त ने अपने मरने पर तुम्हारा ध्यान रखने का अनुरोध मुझसे किया था। वचन दिया होगा—'मैं तुम्हे पत्नी के रूप मे स्वीकार करूँगा।' कहा होगा—हरगिज धोखा नही दूँगा। इससे उसके पति को खुशी हो सकती है। यह उस मगलसूत्र का अपमान नही।

उस युवती ने भी बहुत कुछ कहा होगा—उसने एक आदमी को प्यार किया था। अब और एक आदमी वह प्यार नहीं कर पाएगी। दूसरे किसी पुरुष की सेवा-टहल करना नामुमकिन ! वह हार जाएगी।

कामातुरता मे उस आदमी ने उसका भी जवाब दिया होगा—दिवंगत पति से उसके प्रेम पर उसे कोई आपत्ति नही है। वह स्वयं उस आदमी से आत्मीयता अनुभव करता है। वह युवती उसकी सेवा करे न करे, पर वह उसे प्यार करता है।

उस झोपड़ी के छोटे कमरे का दरवाजा "हाय भगवान !" की टूटे दिल की

युवा के देहान्त के दिन सारी पड़ोसिनें उस औरत के पास रही। वे उसे समझाती सान्त्वना दे रही थी। दूसरे दिन वे आती-जाती रही। वे उसी के पास थोड़े ही बैठी रह सकती थी। उस दिन तीन-चार स्त्रियो ने मिलकर उसे नहलाया। कुछ कांजी पिलायी। उसने इनकार किया। मरा हुआ आदमी तो जा चुका। कांजी न पीने से उसे वापस नही लाया जा सकता। दयालु पड़ोसिनों ने उसके आँसु पोछ दिये। वे ख़ुद भी रो पड़ी थी। कांजी की थाली के सामने बैठी वह फफक उठी। वे औरतें भी रो उठी।

"हाय! मुझे अकेले ही इस थाली से खाना पड़ रहा है!"

उन स्त्रियो को उस दिन तक इतने कटु तथ्य का सामना नही करना पड़ा था। उन्होंने उसकी जिन्दगी की मौज ही देखी थी। वह युवक उसे हमेशा के लिए छोड़कर जा चुका। अब वह अकेली रह गयी है।

एक बुजुर्ग औरत 'प्यारी बिटिया' कहती उसे गले से लिपटाये सिसक उठी।

युवती ने अन्न-जल ग्रहण नहीं किया था।

कई दिन बीत गये। उस घर मे वह अकेली रह गयी थी, बीते दिनों की जिन्दगी याद करते। आँसू बहते-बहते सूख चुके थे। अब सिर्फ़ एक तीखी जलन रह गयी थी। एक ही सवाल उसकी ओर घूर रहा था—"आगे?" बड़ा टेढ़ा सवाल। जीना तो पड़ेगा। गले पर मंगलसूत्र के चढने के पहले उसके सामने यह सवाल इतनी गम्भीरता से नही उठा था। कन्याओं के सौ अरमान होते है। एक आदमी आएगा। उसे एक पुरुष की स्त्री होने का गौरव मिलेगा। उस गौरव से वह जबरदस्ती अलग कर दी गई है। उसके मन में आज अरमान नही रहे। साथ-ही, उसकी दादियों ने उसे मगलसूत्र का यही मतलब सिखाया है कि वह एक पुरुष की सम्पत्ति हो चुकी।

आगे गुजारा कैसे हो? दूसरे किसी मर्द की सेवा-टहल करना! उसकी तो कल्पना तक वह नही कर सकती। वह एक पुरुष की सेवा नहीं कर रही थी। वह आगे ऐसा आनन्द नही पा सकती।

अपने गले मे मगलसूत्र के अस्तित्व का वह अनुभव कर रही थी। उसका मालिक, जिसने उसके गले मे मगलसूत्र बाँधा था, चल बसा!

जो आँसू सूख चले थे उनका सोता फिर से उमड़ पड़ा।

किसी ने उसे स्नेह दिया, दुलारा और मनाया-रिझाया। पर वह'' वह अपनी हस्ती महसूस कर रही थी। वह किसी की आँखों का तारा रही थी। तभी तो वह ज़िद्दी हो गयी थी। वह रूठा करती थी— नखरे किया करती थी।

उसे रोते, दुःखी होते देख वह आत्मा उसी वातावरण मे सिसकती भटक रही होगी। उसे अहसास हुआ कि वह आत्मा उसके चारों ओर मंडरा रही है। वे सिसकियाँ उसके बदन को छू रही है। गालो पर गरम बोसा महसूस हो रहा

शहर के अँधेरे कोने मे वह दिखाई देती है। उसका न कोई घर है न घोंसला। दिन में सड़कों पर भटकती फिरती है। फिर भी वह जिन्दगी गुजार रही है।

कुछ दिन बाद···

चौराहे पर एक प्राणी बैठा भीख माँग रहा था। उसके अंग-अंग से पीब-मवाद निकल रही थी। उस समय भी गले के व्रण से चिपटा मंगलसूत्र पड़ा था।

और एक दिन,

प्रभात की वेला में चौराहे पर वह औरत मरी पड़ी थी।

एक पुरुष ने उस शरीर को प्यार किया था, सहलाया था। मंगलसूत्र उसका प्रतीक है। यह इस बात का भी प्रतीक है कि स्त्री का एक मात्र गौरव पुरुष की पत्नी बनकर रहना है।

× × ×

क्या वह औरत मंगलसूत्र का अपमान कर रही थी? किसे पता? आप ही फैसला करें।

वह रास्ता ढूंढ़ने का समय था। सुदूर भविष्य का नही। दूसरे दिन का भी नही। उसी जून के खाने की चिन्ता थी।

उसे अब भी उम्मीद थी। वरना क्या वह जिन्दा रहती? उसकी आँखें क्या कुछ खोज रही थी? उसने देखा—सडक से एक आदमी जा रहा है। उसने ध्यान से देखा कि कौन है। इसलिए कि आदमी परिचित-सा लग रहा था। उसके पति साथ कई बार घर आया था। दोनो मित्र थे ''वह आदमी कहाँ जा रहा होगा?

उस पुरुष के विषय में कई बातें उसके दिमाग मे उभरने लगीं। जाने कैसे और क्यों यह हुआ! उसकी सुनी समझी हुई थोडी-सी बातें। उस आदमी का अभी ब्याह नही हुआ है। मेहनती है, कमाता है। उसके हाथ मे हमेशा पैसा रहता है। उसके पति ने उससे उधार लिया था।

वह आदमी सीधे उसके घर की तरफ़ आ रहा था। वह उठ खड़ी हुई।

थोड़ी देर वह आँगन मे खडा रहा—चुपचाप। बोलने के लिए उसे शब्द नही मिल रहे थे। कुछ घबराया-सा था। युवती ने भी कुछ नही कहा। उसकी आँखो से आँसू टपाटप बह रहे थे। शायद उसे वे दिन याद आ रहे थे जब पति के साथ वह आदमी आया करता था।

एकाएक उसने शिष्टाचार की बात सोची। अपना चेहरा कपडे से पोछकर उसने कहा, "आइए।"

सुनते ही वह भीतर आ गया। वे बडी देर तक बातें करते रहे। बीमारी का हाल, मौत, बहुत-सी बातें। उसने मातम प्रकट किया। अपनी दोस्ती के दिनों की बात करते हुए वह बोला :

"मुझे पता है। तुम दोनों की घनिष्टता पर वह बराबर कहा करता था।"

उनकी बातचीत जारी थी। वह भविष्य पर पहुँची।

उस आदमी ने पूछा, "अब क्या करने का खयाल है। वह बोली, "गुज़र जाएगा। जिये बिना कैसे काम चलेगा?"

उस पर गौर से नजर डालते हुए उस युवक ने पूछा, "क्या कुछ खाया नहीं?"

"खा चुकी।"

"बहुत कमज़ोर दीख रही हो। सच बताना।"

वह चुप रही।

उसने कमर से कागज़ की एक पोटली निकाली।

उस औरत ने कहा, "नही! भूखी नही हूँ। मन के कष्ट से ही कमज़ोरी लगी रही है।"

उसने भावावेश में अपने मित्र की दोस्ती का उल्लेख किया; "कुछ संकोच

किया ? कोई नहीं। सब अपने लिए जनती हैं, पालती-पोसती हैं— बाप हो या न हो! स्वार्थ ही स्वार्थ है।

उत्कण्ठा का कारण स्पष्ट है। जनना और पालना—यही तो है पेशा। उससे आय चाहिए, इसलिए उत्कण्ठा स्वाभाविक है।

बच्चा चलने-फिरने की आयु का हुआ ही था कि उसका पेट फिर गदरा आया। वह औरत है, जनने के लिए जनमी है। जनने के लिए गठित थी उसकी देह। भीख माँगकर ही सही, वह खाती-पीती थी। उसके शरीर मे मांस था। वह सुरसुराता था। उसने फिर बच्चा जना। एक को बगल में लिये और दूसरे का हाथ पकड़े वह भीख माँगती फिरी।

भीख मे जो हाथ लगता, उसका एक-तिहाई ही उसे खाने को मिल पाता। कभी-कभी तो बच्चो के पेट भरने को ही पूरा नहीं हो पाता। तब वे रो उठते। उसका पेट जल रहा होता। उसे क्रोध आ जाता।

रात को सो नही पाती। दोनो बच्चे एक साथ रोते-चिल्लाते। बड़ा भी जब जिद् करके रोता तो दोनों को दोनो बगलो मे लिये चलती। लेकिन कितनी दूर चल सकती थी?

भारी बोझ का क्लेश उसके चेहरे पर दिख आता था। कभी वह तेल न मलने के कारण नारियल के धागे-से बिखरे पड़े बालों को बाँधकर बड़े बच्चे को उछालती-पकड़ती। कभी दांत पीसती और बड़बड़ाती हुई वह रोनेवाले छोटे बच्चे के नाक-मुँह एक साथ बन्द कर देती। यह सब होश-हवास भूलकर करती।

कभी पेड़ तले गोद मे सिर रखकर सोनेवाले बच्चो के बाल सुलझाकर जुएँ मारती रहती। या फिर उनके शरीर की धूल पोछती रहती। वे हिलें भी नही, वे सो लें, सुख से सो ले।

किन्ही-किन्ही घरो की मालकिनें उससे पूछती, "अरे, दो हो गये हैं!"

वह कहती, "भगवान का परसाद है, माँजी। मैं पालूँगी।" और फिर हाथ जोड देती, "पाव सेर काँजी मिल जाए तो ख़ुद उसका मांड पिऊँगी और चावल के दाने उन्हे देकर बड़ा करूँगी।"

वह प्रसन्नता के साथ अपने बच्चो की ओर देखती और छोटे बच्चे का माथा चूम लेती।

कोई सहृदया मालकिन कहती, "कई-एक तो दो नन्हे-नन्हे पैर देखने के लिए मनौतियाँ करते है!"

कोई और कहती, "हाँ, बुढ़ापे मे भीख माँगकर ही सही, खाने-पीने के लिए कुछ-न-कुछ ला दिया करेंगे।"

भिखारिन की संतानें हों, लेकिन उनके भी अपने अरमान है। उन्हे क्या मालूम कि इस धरती का ऐश्वर्य उनके भाग्य मे नहीं है। लेकिन पैदा होने भर से

लम्बी आह के साथ बन्द हो गया।

× × ×

उस छोटे घर में चूल्हा जलता है। वह स्नान करती है, साफ़ कपड़े पहनती है। आधी रात तक ढिबरी जलाये प्रतीक्षा करती है। उसने एक अच्छी चटाई व तकिया खरीद ली है। वह एक आदमी का खाना रख देती है। किसी-किसी दिन वह भूखी भी रहती है।

उसे पहले इस तरह रहना नहीं पड़ता था। उसका पति समय पर आता था। वे साथ-साथ खाना खाते थे। अब उसने देर तक जागना सीख लिया है। भूखा रहना सीखा है। वह उसका फर्ज़ है।

गले का मंगलसूत्र मानो वह बात याद कर कांप उठा।

वह आदमी किसी दोस्त का ज़िक्र किया करता था। किसी बड़े अमीर सेठ का भी। कहता था—वे दोनों उस परिवार की मदद कर रहे थे। वह उनकी तारीफ़ का पुल बांधा करता था।

एक रात उस आदमी के साथ वह दोस्त भी आया।

पति-पत्नी के बीच में फिर से दबी ज़बान में बात उस घर के पिछवाड़े से सुनाई दे रही थी। उसने टूटे दिल से याचना की होगी: "मेरा सर्वनाश मत करो।"

उसने पति के अधिकार से हुक्म दिया होगा कि आज्ञा मानो। मंगलसूत्र का आदेश पति का अनुसरण करना है न? उस समय उसके गले पर स्वर्ण मंगलसूत्र के अलावा एक आदर्श मंगलसूत्र भी था। उस आदर्श मंगलसूत्र का तिरस्कार कैसे किया जाय?

उस समय भी उसने दिवंगत प्राणनाथ की आत्मा से पूछा होगा—"क्या करूँ?" मगर वह आत्मा जा चुकी थी। जवाब नहीं मिलेगा।

उसने मंगलसूत्र का संदेश सीखा है। उस आख़िरी आदेश को वह ठुकरा नहीं सकती। वह भी पति-सेवा का अंग हो सकता है।

दोनों पुरुष उस कमरे में आ गये। मंगलसूत्र की पुकार उसे भी उसके भीतर ले गयी।

और एक दिन वह सेठ आया। दिन गुज़रते रहे। वह तब से न जाने किस-किसको ले आता रहा। और, यह यन्त्र की तरह अनुसरण करती रही।

मगर बहुत दिन बीत नहीं पाये कि एक रोज़ उसे सारी रात जागना पड़ा। दूसरे दिन भी वह नहीं आया। चार दिनों तक वह दिखाई नहीं दिया। कहते हैं, एक दिन उस झोंपड़ी से मारपीट व भगदड़ की आवाज़ सुनाई दी। उस आदमी का सवाल था कि उसकी अनुमति के बिना वहाँ कौन आया।

× × ×

गोल-सी आँखें कही से भी खाने की चीज ढूंढ निकालती। वह जिधर भी हाथ रखता उधर खाने की कोई चीज जरूर होती। लेकिन छोटो को वह कुछ भी नही देता। हर वक़्त उसके दोनों हाथ भरे होते और दोनों ओठ चलते रहते। छोटे दोनो यह देख रो लेते।

माँ बडे को कोसती, "हाय रे शैतान! ये तेरे सगे नहीं हैं?"

मुँह भरा होने के कारण वह कुछ बोल नही पाता। कभी-कभी वह माँ के पीछे नही दिखता। मगर भागकर जब-तब आ जाता। मालूम है, क्यो? माँ के साथ चलने के लिए नही, बल्कि माँ की कमाई का हिस्सा वसूल करने के लिए।

आप लोग उसे जी भर कोस लें। वह चौथी बार भी गर्भवती हो गयी। किस परिस्थिति मे—यह नही कहूँगा। कहने का कोई प्रयोजन भी नही। उसने ख़ुद ढोया, ख़ुद व्यथा पीकर बच्चा जना। उसके स्तनों का दूध पीकर वह बड़ा हो रहा है। आपके लिए, मानव-जाति के लिए एक और योगदान! किस वास्ते? ऐसी सताने किसलिए? प्रकृति ने क्यों चाहा कि वह बच्चा जने?

एक ही जिज्ञासा है। उस दुकान के बरामदे मे तीनों बच्चों के सो जाने के बाद, चारो ओर चुप्पी छा जाने पर, उसके पास जो पुरुष सरकता आया उस पुरुष से उसने क्या कहा होगा? "नही, नही" कहकर उसे रोका न होगा। *"अब मुझसे और बच्चा नही जना जाएगा", वह ऐसा कहे बिना नही रही होगी?* वह कामातुर पुरुष यह सब कहाँ सुन पाया होगा? दो-चार आने से जरूर हाथ बदले होगे। उस हस्तान्तरण से सम्पन्न इकरारनामे मे भविष्य के बारे में कोई शर्त नही थी? शायद नही।

वे भिखारी रहे हों, मगर मनुष्य थे। माँस मे माँस मिलकर एक होने की त्वरा होती है।

× × ×

दो बच्चे पीछे, एक हाथ पकड़े और एक बगल मे—वह टुकड़ी यों चला करती।

किसी द्वार पर पाव सेर काँजी मिल जाती तो जैसा उसने प्रण किया था, बच्चों को चावल के दाने खिलाने के लिए वह मिट्टी का बर्तन ओठो से लगाकर माँढ पीना चाहती। ज्यो ही बर्तन ओठों से लगता, चार हाथो की झपट मे माँड और दाने नीचे गिर जाते। क्या करे वह?

वह और बच्चा जनेगी? यह भी कोई सवाल है? माँस नही, हड्डियाँ ही हड्डियाँ है। ऐसी हालत मे मुश्किल है। मगर निश्चयपूर्वक कैसे कहा जा सकता है?

भारी वर्षा की एक रात तीसरा बच्चा कै करने लगा। उसका पेट भी बिगड़ चला। कौन जाने क्या हो जाए? दूसरा बच्चा जाग उठा। उसने पूछा, "माँ,

चुकौती[1]

स्त्री-जन्म का एक ही स्पष्ट प्रयोजन होता है—बच्चा जनना और उसे पालना। स्त्री-शरीर के गठन विशेष का और क्या समाधान हो सकता है? जनना और जनकर वंश को बनाये रखना!

वह शहर में मारी-मारी फिरती रही। सयानी हुई तो समय पाकर उसके हमल रह गया। जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए वह पैदा हुई थी वह इस प्रकार निभ गया। उसने बच्चा जना। उसकी छाती पर जिस वास्ते दो स्तन बढ़े वह भी निभ गया। वह एक बच्चे को बगल में लिये फिरती दिखाई पड़ी।

गर्भ के पूर्ण होते-होते कई तकलीफ़ें झेलनी पड़ी थीं। कड़ी पीड़ा सहकर उसने बच्चा जना था। बच्चा बोझ था, क्लेश था। पहले जो कुछ मिलता सब वह अकेले खा सकती थी। बेफ़िक्र चल सकती थी। आज कुछ मिल जाता तो बच्चे को भी देना पड़ता।

वह चाहती थी कि वह बच्चा बड़ा हो जाए। उसे लेकर वह कोई अरमान रखती थी? होगी, रखती होगी। आशा ही तो उत्कण्ठा का कारण है। वह सपने देखती होगी कि बच्चा बड़ा हो जाए और फिर अपनी माँ की देख-भाल करे। वह उसे खिलाती थी, पुचकारती थी, पालती थी। मगर किसलिए? कभी वह चुम्बन लेती थी, सहलाकर और पुचकारकर ख़ुश होती थी। तब तो वह ज़रूर सपने देखती होगी, अरमान रखती होगी।

दस महीने पेट में ढोया, दर्द सहकर जन दिया। और अब अपने ख़ून-पसीने से पाल रही थी। माँ को बहुत कुछ सहना है तो कुछ मिलना भी तो चाहिए! कौन ऐसी माता है जिसने मात्र मानव-जाति की भलाई के लिए बच्चा जना और पाल-पोसकर उसे बड़ा

---

१. ओरु कणक्कु तीर्कल्

शायद उड़ंकू होकर बाल-खग आसमान में गायब हो गया हो।

दूसरे बच्चे को कई दिनों से यह सूझ रहा था कि वह अकेला जाए तो कुछ-न-कुछ मिल जरूर जाएगा। खुद खाने के बाद बचा अंश माँ को भी दे सकेगा। उसने एक गाना भी सीख रखा था—

'भूख लगी री माँ जी !
भूख लगी री माता !...'

माँ सहमत हो गयी। पहले दिन ही उसे सफलता मिल गयी।

सभी प्रकार से थकी माँ कहीं एक जगह बैठी रहती। उसका बच्चा भीख माँगकर उसे सब कुछ ला देता।

उसने सिर्फ एक बार बच्चा जना होता तो उसे क्या यह नसीब होता?

वह दोपहर और शाम को आता। जो कुछ मिलता पूरा ले आता। वह गाता हुआ पहुँचता तो सभी कुछ-न-कुछ दे ही देते। उतनी अच्छी थी उसकी ज़बान। बेचारा भीख माँगने के लिए ही जो पैदा हुआ था।

माँ को खिलाते उसका जी नहीं भरता।

एक दिन दोपहर को वह नहीं आया। माँ शाम तक इंतजार करती रही। अन्त में उसे खोजने वह खुद चल पड़ी।

सड़क के एक मोड़ पर वह पड़ा मिल गया। गाड़ी के नीचे दबकर उसकी छाती पिस गयी थी। उसकी उस दिन की कमाई—उस परिवार का उस दिन का खाना—सड़क पर बिखरा पड़ा था।

× × ×

वह बेबोझ और अकेली दिखने लगी। चौथा बच्चा मर गया होगा या वह भी अपने गुज़र-बसर की फिक्र में चला गया होगा। नहीं तो माँ ने उसे कहीं यह सोचकर छोड़ दिया हो कि दूसरे तीनों के समान यह भी बेकार होगा। कितने दिनों से बेकार बोझा ढो रही थी। अब थोड़ी आराम से चलूँ!

फिर वह एक जंगली लकड़ी टेककर चलती दिखने लगी।

× × ×

नगर से एक राजमार्ग चलता है। सीमा पार का गाँव आ गया है। राजमार्ग के छोर से वह रेंग रही है। उसके एक हाथ में टेकने की लकड़ी है और दूसरे में एक गठरी। दोनों को जोर से पकड़े वह रेंग रही है।

किस वास्ते? क्या उसका कोई और गन्तव्य है? शायद होगा। हर आदमी का गन्तव्य पूर्वनिश्चित होता है। वह कहाँ है, किसी को पता नहीं। मगर वहाँ पहुँचना ही पड़ता है। वह अभी नहीं पहुँच पायी है।

न रेंगेगी तो उसकी जिन्दगी थोड़ी और लम्बी हो जाए। ऐसा नहीं होना है। काल भी पूर्वनिश्चित होता है। भीतर की जीवन-शक्ति समाप्त हो जानी

उनका भी उस पर हक़ अवश्य है।

दुकान पर केले के फल की ओर उँगली उठाकर बच्चे रोते और बिना लिये नहीं मानते। उन्हें खिलौने चाहिए। वह क्या करती? वह चोरी करती। कुछ हठ पूरे होते, कुछ अधूरे रह जाते।

बच्चा जनने की वासना उसमें क्यों पैदा हुई? नहीं, भूल हो गयी। वह तो औरत होकर जनमी है। उस माँस की यह प्रकृति है। पालने की ज़िम्मेदारी भी क्या सिर्फ़ औरत की है? हाँ, सिर्फ़ उसी की है। सचमुच यह ज़ुल्म है। जब वह और बच्चे सड़क से चलते तब उनके जन्म का ज़िम्मेदार पुरुष भी वहाँ से गुज़रता होगा। उसकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं है? यह ठीक नहीं है। यदि बच्चा पालना मानव-जाति के हित में एक दायित्व है तो उसमें पुरुष की भी भागीदारी होनी चाहिए। पुरुष का चलता बनना—यह ठीक नहीं। स्त्री को प्रसव की पीड़ा होती है तो उसके बराबर की पीड़ा पुरुष को भी होनी चाहिए। स्त्री के एक ही स्तन होता, दूसरा पुरुष के होता, तब वह गैर-ज़िम्मेदार होकर चलता न बनता। दूध भर कर स्तन दुःखता तो वह दौड़ा चला आता।

हाय! कितने बचकाने विचार हैं ये! खैर।

बगल का बच्चा उतरकर धरती पर चलने लगा तो उसके फिर पेट रह गया। गलती एक बार हो सकती है। पहली बार वह जवान थी। माँस की सुरसुरी के मारे परिणाम पर उसकी नज़र न जा सकी और वह सब हो गया। एक बार नहीं, दूसरी बार भी। इतना सब जिसने झेला, यह सारा बोझ जिसने ढोया, उससे तीसरी बार भी भूल हो जाए तो ठीक नहीं। अब भी क्या शील-संकोच नहीं? भविष्य के बारे में नासमझ रह गयी?

वह औरत है और ऐसा कोई नियम नहीं है कि कोई औरत इतनी बार ही बच्चा जने। इसीलिए यह हो गया?

नहीं। एक रात बड़ा बच्चा केले के लिए हठ कर बैठा। उस दिन गंदी नाली से केले का एक टुकड़ा मिला था उसे। वह खा लिया तो उस पर उसका स्वाद चढ़ गया। अगली दुकान के बरामदे में पड़ा, सोता एक मर्द जग उठा। वह भी शायद भिखारी था। वह पास आया। उन दोनों में बातचीत हुई। उसके पास सिर्फ़ दो आने थे। उस दो आने के खर्च पर बड़ा बच्चा केला खाकर सो गया।

यह था तीसरी बार पेट रह जाने का कारण। माँस की सुरसुरी का उससे कोई सरोकार नहीं। मगर उसका शरीर कच्चे माँस का बना था। प्रकृति ने निश्चय किया कि वह एक और बार बच्चा जने।

तीसरे बच्चे को बगल में लिये, दूसरे का हाथ पकड़े और पहले को पीछे चलाती वह चलने लगी।

पहलौठा बच्चा खाने की चीजें माँग लेने में बड़ा होशियार था। उसकी

नानी मर गयी[1]

पिताजी, माँ दीदी, छोटा भाई, बच्चो के बाबूजी—सब लोग घेरकर खड़े हुए हैं। लगता है कि मन्दिर मे हैं। फिर भी देख सकती हूँ। सूरत बदल गयी है, फिर भी पहचान सकती हूँ। वे लोग वही है। केशु बेटा भी है। हमेशा उसकी उम्र छः बरस की होती। वह हाथ फैला देता है, आलिंगन के लिए। सब बुला रहे हैं। नहीं, उतने लोग ही नहीं, पीछे कैसी भीड़ भी है। बड़े मामा हैं, और है सभी मामा। नानी भी है। वो नाना ही होगे। देखा नही। उनके पहले के परदादे, परदादियाँ —वह कतार लम्बी होती जा रही है। हर किसी को पहचान सकती हूँ। वह भीड अन्तहीन है। सबको अलग से जान सकती हूँ। पुरानी पीढ़ियाँ।

सब लोग बुलाते है—हाथ बढा देते हैं। शब्द नहीं। एक शब्दहीन अनन्तता।

दूसरा एक आदमी है। दादाओं और मामाओ की भीड मे से नही। क्यों वह इस भीड मे आ गया? देखने की शक्ति ले जाने की क्यो कोशिश की? तब वे नसें एक बार चालित हो गयी, जो ठिठुरकर ठण्डी पड़ी थी।

खुली चाँदनी वाली वासन्ती रात। पूर्णमासी का दिन नहो, उसके पहले का दिन है। चाँदनी, जो पूर्णता तक पहुँची थी, उसी रात को मन्द पवन बह रहा है। हरे पत्ते और फूल मानो हवा को निमन्त्रण दे रहे हैं। वह दिव्य संगीत उस वातावरण मे मिल गया है। क्या हवा गाना गाती आ रही है? या कि पेड़ो की डालियाँ गा रही हैं? जंगली झरना कल-कल करता, टकराता, गिरता बह रहा है। कहीं बैठे रात की चिड़ियाँ रो रही हैं। उनका जोडा अभी पहुँचा

---

१. मुत्तशि मरिच्चु }.

राम को क्या हो गया ?"

उसने राम को सहलाया। उलटी थम गयी तो उसने पूछा, "माँ, राम अब उलटी क्यों नही करता ?"

माँ राम का नाम लेकर रो रही थी।

रात भर वह दूसरा बच्चा सोया नहीं। सवेरे उसने देखा कि उसका छोटा भाई मरकर ठिठुरा पड़ा है। चौथे बच्चे को बगल मे लिये, दो आने के केले के लिए जन्मे बच्चे को अन्तिम बार चूमकर वह चल पड़ी। चौथा बच्चा मरे पड़े बच्चे की ओर इशारा करके अपनी भाषा में कुछ बोला। शायद पूछ रहा था कि भाई को हाथ पकड़े क्यों नही ले आ रही हो ?

आज तक वे चारो साथ-साथ थे। दूर निकल आने तक दूसरा बच्चा मुड-मुड़कर देखता रहा।

वह टुकड़ी घटकर तीन मे रह गयी।

पहलौंठा अपना खाना कमाने के लिए अकेला चला जाता। शाम को लौट आता। माँ पूछती कि हाथ मे कुछ हे ? उसका अपना पेट नही भरता था ! माँ उसके लिए कुछ-न-कुछ बचा रखती। इसीलिए वह आता था। कभी वही सो जाता, कभी चला जाता। जिस रात वह चला जाता उस रात माँ से सोया नही जाता। उसकी आत्मा बच्चे के पीछे बेचैन हो चल पड़ती।

एक रात वह नही आया। फिर कभी नही आया। कोई पता नही। दसरा बच्चा पूछता, "बड़ा भाई कहाँ गया, माँ ?"

फिर कुछ दिन उसने भीख नही माँगी, बल्कि शहर का हर कोना बारी-बारी से छानती रही। होटलों के पीछे, मोडों पर, कूड़े के टीलो के पीछे···सब कही उसने कई बार खोज-ख़बर ली। कई लोगो से पूछा। चार छोकरो को एक साथ खडे देखती तो दौड़कर वहाँ पहुँचती।

वह सिर्फ एक बात जानना चाहती थी। अपने बच्चे को जिन्दा जान लेती तो वह तृप्त हो जाती।

सोने के वक़्त दूसरा बच्चा कहता, "माँ, बड़ा भाई आ जाएगा। उसके लिए कुछ रख ले ज़रूर।"

जाने कितने दिनो से वह एक नारियल के खोपड़े मे अपने बच्चे का हिस्सा बचा रखती आ रही थी !

एक रात वह "बेटा !" पुकारती हुई अचानक नींद से जागकर उठ बैठी। उसे लगा था कि वह आकर उसे पुकार रहा है।

उसे आशंका थी कि वह मर गया होगा। उसने उसकी आवाज स्पष्ट सुनी थी। जाग उठी तो वह नही दिखा। वह मर गया होगा ! उसकी आत्मा आकर पुकार रही थी !

"माँजी, पानी चाहिए ?"

नानी की आँखें चारों ओर गयी। तब तक गंगाजल ले आया गया था।

किसी एक बिन्दु पर दृष्टि लगाये नानी ने शिकायत के स्वर में पूछा : "वहाँ आकर क्यों खड़े हैं, मुझे परेशान करने ?" सबने वहाँ देखा जहाँ नानी की दृष्टि गयी थी। वहाँ कोई नहीं था।

नानी की आवाज कमज़ोर पड़ गयी थी। वह लड़खड़ा रही थी। कोई उसे समझ नहीं पाया।

"नानी किसी से बात कर रही है। जो लोग मर गये हैं, वे सब मरनेवाले के पास आ जाते है। मरनेवाले उन्हें देख सकते हैं। हम नहीं देख सकते।" नानी से उम्र में छोटी दूसरी नानी ने ऐसा कुछ कहा। शायद अगली बारी इस नानी की होगी।

तब उससे भी छोटी एक नानी ने कहा, "मरते-मरते लोग पास हो जाते, जन्मते-जन्मते अलग भी हो जाते।"

नानी की बड़ी बेटी को दूसरी नानियों की यह बातचीत पसन्द न आयी। उसने कहा, "माँ ठीक-ठीक सुन लेती है। हम जो कुछ कहते, सब वह सुन लेती है।"

सब लोग चुप रह आये। नानी की आँखें मुँद गयी।

बैंड-बाजे वाली शादी हो गयी। घुप्प अँधेरा। उस अँधेरे में सुदूर कहीं से एक कलनाद सुनाई पड़ा। वह नाद रूप धारण करता। एक सवाल बन जाता। हवा, वर्षा और बिजली वाली पहली रात को पेड़ के नीचे पूछा गया सवाल—'तू अपना चारित्र्य किसके लिए सुरक्षित रखती है ?'

उसका जवाब नानी ने दिया—मेरा चारित्र्य मैंने सुरक्षित रखा। आपके लिए—जिन्होंने मेरी गर्दन में मंगलसूत्र बाँधा।

उत्तर उसको मिला, जिसने सवाल पूछा नहीं था।

प्रश्नकर्ता, भयंकर गर्जन से घुप्प अँधेरे की ठण्ड से अरूपी हो चला गया। शादी के कुछ बाद, अब अनन्त अँधेरे के घनेपन पर पीढ़ियों की भीड़ लगी है। उनमें केशु बेटा है। नानी को ऐसा लगा कि केशु बेटे को उस प्रेमी की सूरत मिल गयी है। अकारण सोच है। प्रेमी को कभी-कभार याद करती रही, बस। पीढ़ियों के बीच प्रेमी है।

पीढ़ियों में एक अकेला स्थान उसे प्राप्त हो गया है। क्यों उसकी क्या अपनी पीढ़ियाँ नहीं है ?

बरफ से भी कड़ी ठण्ड। देही और देह अलग हो गये।

बेटे-बेटियाँ और पोते-पोतियाँ रो रही है। नानी की ठण्डी लाश को गले लगाकर बिलख रही है।

है। शायद इसीलिए वह रेंग रही है।

राह-चलते लोग उस पर एक नजर डालकर आगे बढ जाते। उन्हे रुकने की फ़ुर्सत कहाँ ? उन्हें भी अपने-अपने गन्तव्य पर पहुँचना है।

उसकी छाती पर धब्बे से जो दिखते हैं वह चार बच्चों के चूसे हुए स्तन हैं। बगलो मे बच्चों को बिठाने के खुरंट हैं। उसे सिरजनहार के सामने कोई कैफ़ियत नही देनी पड़ेगी। स्त्री होकर वह पैदा हुई और उसने अपना कर्त्तव्य निभाया।

थोड़ी रेंगती और फिर मुड़कर पीछे देखती। कौन जाने किसको ? शायद जीवन का सिंहावलोकन कर रही थी !

जो इतने साल जिन्दा रही उसके पास जिन्दगी के बारे मे कहने के लिए कुछ बातें जरूर होंगी। उसके पास भी अगली पीढ़ियो को देने के लिए कोई सदेश होगा। मगर उसके ऐसा कोई नहीं रह गया है जिसे वह अपना संदेश सुना दे।

वह माँ बनी। उसे भी एक माँ ने जन्म दिया था। लम्बी साँस-सी हवा मन्द-मन्द चल रही थी। सडक के किनारे के पेडो के पत्ते खडखडा उठे थे। वहीं कहीं उसकी माँ की आत्मा बेचैन हो घूमती होगी। वह बातास उसकी लम्बी साँस होगी, शायद। वह आत्मा किसी अज्ञात भाषा मे बेटी को आश्वस्त कर रही होगी।

एक पेड की छाँह मे पहुँचकर एक उभरी घनी जड़ पर सिर रख वह जिंदगी समाप्त हो गयी। आखिरी प्यास बुझाने को एक बूँद पानी के लिए खुला वह मुँह वैसे ही खुला रह गया। एक बूँद पानी मिला होता तो वह बन्द हो गया होता। आँखें घूरती-सी रह गयी। उन्हे ढप कर बन्द करने के लिए कोई नही था। एक घुटना टेढा रह गया।

वह दृश्य एक संदेश देता है—उसकी जिन्दगी का निचोड। कोई भी एक ही नजर उस पर डाल पाता। थोड़ी देर कोई देखता रह जाता तो उसे शायद वह सदेश मालूम हो जाता।

सिर्फ एक भिखमँगा लडका उसे देर तक गौर से देखता रहा। मानो वह उससे कह रही हो—

"मैंने अपना काम पूरा किया। जिन्दगी भर मैं बोझ ढोती रही। मुझे किसी ठण्डी जगह की पनपती हरियाली पर सदानीरा अन्तःसलिला सोते की ओर मुँह करके लिटा दे जिससे मैं शान्ति अनुभव कर सकूँ।"

उसके अपने बच्चे होते तो शायद वह कुछ और ही बात कहती।

भुला दिये जानेवाले किसी जीव के पास कहने के लिए इसके सिवा कुछ नही होगा।

वह भिखमँगा लड़का कौन था ? वह क्यों इस प्रकार देखता रहा ? शायद उसकी नजर उस औरत के पासवाली गठरी पर जमी थी।

नानी की बड़ी बेटी ने कहा, "मेरी माँ पुण्यात्मा है। कोई गलती नही की है। माँ का अगला जन्म राजमहल में होगा, राजकुमारी होकर।"

किसी ने विरोध नही किया।

इच्छा पूरी नही होती तो फिर जन्म होता? मरते हैं जन्मने के लिए। जनमते हैं मरने के लिए।

भयंकर आँधी, वर्षा, गरजन और बिजली की रात। वह बड़ा पेड़ सूख नही गया। उसके पत्ते छोटे हो गए थे। आसमान को छूता ऊँचा खड़ा है। एक गाय और एक बैल ने नीचे आश्रय ढूँढ लिया था।

आँधी-तूफ़ान मे एक पेड़ टूटकर गिरा।

विकार विवश हो बैल गाय के पीछे हो गया। उसने अपनी प्रेमिका की पीठ सहलाने जीभ निकाली। गाय ने मुड़कर देखा। वह क्रुद्ध थी। बैल ने कुछ कहा।

"तू किसके लिए चारित्र्य की रक्षा करती है?" क्या बैल यों पूछ रहा था? पता नही। कौन जाने!

पर गाय ने मुड़कर अपना मुख बैल के मुख से लगाया। जानवर अपनी पीठ पर चारित्र्य की रक्षा करते होंगे। जन्म और मृत्यु वही से होती है।

किसी ने देखा नही था कि नदी के बीच के पुलिन पर दो खरगोशों की प्रणयलीला हो रही है। समुन्दर के किनारे दो कुत्तो ने प्रणय-नाटक का अभिनय किया। जंगली झरना उस रोज भी कल-कल ध्वनि से बहता जा रहा था। कई स्थानों मे प्रेमिका, प्रेमी के लिए द्वार की चटखनी लगाए बिना, उसपर दस्तक के इन्तजार मे कान खड़े करके बैठी होगी।

नानी की बेटी तब भी बोलती है, "मेरी माँ पुण्यवती थी। किसी राजमहल मे राजकुमारी होकर जन्म लिया होगा।"

नानी की समाधि पर लगाया गया नारियल का पौधा तेज़ी से बढ चला। मगर हवा लगने से उसके ऊपर का हिस्सा टूट गया था।

नानी ने किसी से प्यार किया। तब युवती थी। दूसरे से शादी की। उसके साथ जिया और मर गयी। पति-पत्नी का वह रिश्ता अच्छा रहा।

नानी का पुनर्जन्म राजमहल में हुआ क्या? नानी ने गाय होकर जन्म लिया क्या? पहले खरगोश थी क्या? या कि समुन्दर के किनारे की लावारिश कुतिया? क्या वे सब प्रेमिकाएँ नानी के पुनर्जन्म है, जो प्रेमी के लिए कमरे की चटखनी लगाए बिना, इन्तजार करती है?

क्या उस चिता-भस्म मे क्षार भी नही था?

नही था।

वह दृश्य प्रेमी और प्रेमिका के लिए तैयार किया गया है। फिर पिछले साठ वर्षों में प्रकृति एक ऐसी सेज बिछा नही पायी है। फिर हवा का रुख बदल गया। हरे पत्ते कडे हो गये। पत्तों का मर्मर एक पुरानी कहानी हो गया। कहाँ जाकर अब पत्तों का मर्मर सुना जा सकता है? हवा पत्तो को परस्पर मिलाती। जंगल की हरीतिमा छिप गयी है। हरे पत्ते पककर सूख गये है। जगली झरना भी सूख गया है।

कहाँ-कहाँ प्रेमी-प्रेमिकाएँ गले मिलते हैं? समुन्दर के किनारे। नदी के बीच पुलिनों पर, बाग-बगीचों मे, सोनागार मे भी मिलते। प्रेमी दरवाजे पर दस्तक देकर प्रेमिका को पुकारता। दरवाजा खुल जाता। एक पलग पर दोनो आलिंगनबद्ध होकर सो जाते।

गाज गिराती, कड़कती, बरसाती रात। एक छोटे पेड़ के नीचे पहली रातभर बितानी पड़ी। पानी इस हठ से बरस रहा था कि बन्द नही होगा। उस पेड़ को जड से उखाड़कर गिराने को तेज हवा चल रही है। दिगन्त घोर अट्टहास करते है। प्रेमी-प्रेमिका सटकर बैठे रसीली बातों मे मशगूल हैं। कहा नही जा सकता कि प्रेमी ने प्रेमिका को पुलकित नही किया। उसका हाथ प्रेमिका के कन्धे से गर्दन को घेरकर नीचे झुक आया है। वहाँ उँगली से दबाया। उँगलियाँ और दरारें···प्रेमिका थोड़ी सकुचायी और फिर चिढ गयी।

"ओ, यह क्या करते हो? ऐसा हो तो मैं नही···।" तुरन्त वे हाथ हट गये। प्रेमी ने माफ़ी के लहजे मे कहा, "तेरे सोनागार मे क्या मैंने प्रतिज्ञा का उल्लघन किया?"

एक भयंकर गर्जन। पास खडा एक ऊँचा पेड जड से उखड गया। उसके गिरते दूसरे कई पेड़ भी टूट पडे।

"ओ, फिर भी ऐसा करना नही चाहिए था।"

"तू अपना चारित्र्य किसके लिए सुरक्षित रखती है?" प्रेमी ने निराशा-भरी आवाज़ में पूछा।

बैंड-बाजे के साथ, बडी धूम-धाम से शादी हो गयी। साठ साल पहले का वह मुहूर्त नानी याद नहीं रख रही थी।

छाती फट रही है। अन्तिम साँसें अन्दर और बाहर आ-जा रही हैं। जो इस पीड़ा को सहते, वे उसे सुनाने लौट नही आयेंगे। कोई, इसलिए उस पीड़ा को जानता नही। सब कहते है कि भयंकर पीडा है।

"ओ! कैसी साँसत है?" कोई पीछे खडे होकर कह रहा था।

नानी ने उसे सुना। नानी ने आँखें खोली।

बड़ी बेटी सिरहाने खड़ी है। ठण्डे मन से उसने बुढ़िया से पूछा:

नानी जब पुरानी पीढियों के साथ मिल गयी, तो वह पंजर केवल एक अनन्य वस्तु हो गया। जो उसे दुनिया के लिए जरूरी नही समझते, वे पीढियों के इस सिरे पर हैं। ऐसा कितनी बार रोया जा चुका है !

वह शरीर किस-किस के लिए निदान रहा था ? सत्य, धर्म आदि को, चारित्र्य को, फिर काम-क्रोध-मोह-मद-मात्सर्य आदि को।

त्रिसंध्या। शाम हो गयी। लाल आसमान पर राख लग गयी। सभी घरों पर दिये जल गये।

'सध्या हो गयी, दिये जलाकर अगरवत्ती जलाओ' वह नानी कहा करती थी। अब कोई नही कहता।

पोतों मे कोई रोया : "नानी उठो, हम नाम जपेंगे।"

बडी बेटी को रुलाई सुनाई पड़ी : "मेरी माँ ने आज संध्या-नाम नही जपा। अब यहाँ कौन नाम जपेगा ?"

साथ ले जाने के लिए वहाँ पिछली पीढियाँ नही थी। पति और पुत्र नही। नानी ठण्डी होकर अनन्तता का हिस्सा हो गयी।

उस दुबली-पतली लाश के राख होने मे अधिक देर नही लगी।

पर क्या नानी मर गयी ? नानी नही रह गयी। नानी यानी क्या थी ? जिन्होंने नानी को देखा है, उनकी स्मृतियों मे वह जिन्दा रहेगी। दक्षिण मे जो आम का पौधा लगाया था, वह पेड़ बन रहा है। पश्चिम मे जो कटहल बड़ा होकर फूलता-फलता है वह नानी ने लगाया था। जिस साल नाना नानी को शादी करके ले आये थे, उसी साल वह कटहल लगाया गया था।

नानी अच्छी गृहस्वामिनी थी। अच्छी पत्नी और माँ थी। पडोसियों को कोई शिकायत नही रही।

अच्छी नानी।

अस्सी साल तक जिया उसने। अच्छाइयाँ-ही-अच्छाइयाँ थी उसमे।

नानी न रह गयी क्या ? पहले बतायी चीजें उसके स्मारक हैं। पर वे भी चली जायेंगी। कटहल जड़ें ढीली होकर सूख जाएगा। आम का पेड़ आँधी में टूट जाएगा। बेटे और पोते भी मर जायेंगे। पर नानी न रह जायेगी क्या ?

सबको लगा—नानी रहेगी। नाना का जीवन पूरा नही हुआ था। उस चाल में, दृष्टि मे, बातचीत में—सब मे एक बात प्रतिध्वनित होती थी। एक सन्देह। शायद एक आदमी दूसरे को ध्यान से देखे तो ऐसा सन्देह पैदा होगा।

नानी किसी चीज के लिए प्यासी थी। या फिर किसी में उलझी थी। नानी को कुछ करना बाकी था। कोई इच्छा ? दुनिया मे सबकी किसी-न-किसी प्रकार की इच्छा अपूर्ण रह जाती है।

नानी और जियेगी।

नानी की बड़ी बेटी ने कहा, "मेरी माँ पुण्यात्मा है। कोई गलती नही की है। माँ का अगला जन्म राजमहल में होगा, राजकुमारी होकर।"

किसी ने विरोध नहीं किया।

इच्छा पूरी नही होती तो फिर जन्म होता? मरते हैं जन्मने के लिए। जनमते हैं मरने के लिए।

भयंकर आँधी, वर्षा, गरजन और बिजली की रात। वह बड़ा पेड़ सूख नही गया। उसके पत्ते छोटे हो गए थे। आसमान को छूता ऊँचा खड़ा है। एक गाय और एक बैल ने नीचे आश्रय ढूँढ लिया था।

आँधी-तूफ़ान मे एक पेड़ टूटकर गिरा।

विकार विवश हो बैल गाय के पीछे हो गया। उसने अपनी प्रेमिका की पीठ सहलाने जीभ निकाली। गाय ने मुड़कर देखा। वह क्रुद्ध थी। बैल ने कुछ कहा:

"तू किसके लिए चारित्र्य की रक्षा करती है?" क्या बैल यों पूछ रहा था? पता नहीं। कौन जाने!

पर गाय ने मुड़कर अपना मुख बैल के मुख से लगाया। जानवर अपनी पीठ पर चारित्र्य की रक्षा करते होंगे। जन्म और मृत्यु वहीं से होती है।

किसी ने देखा नही था कि नदी के बीच के पुलिन पर दो खरगोशों की प्रणयलीला हो रही है। समुन्दर के किनारे दो कुत्तों ने प्रणय-नाटक का अभिनय किया। जगली झरना उस रोज भी कल-कल ध्वनि से बहता जा रहा था। कई स्थानों मे प्रेमिका, प्रेमी के लिए द्वार की चटखनी लगाए बिना, उसपर दस्तक के इन्तजार मे कान खड़े करके बैठी होगी।

नानी की बेटी तब भी बोलती है, "मेरी माँ पुण्यवती थी। किसी राजमहल मे राजकुमारी होकर जन्म लिया होगा।"

नानी की समाधि पर लगाया गया नारियल का पौधा तेज़ी से बढ चला। मगर हवा लगने से उसके ऊपर का हिस्सा टूट गया था।

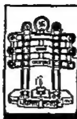
नानी ने किसी से प्यार किया। तब युवती थी। दूसरे से शादी की। उसके साथ जिया और मर गयी। पति-पत्नी का वह रिश्ता अच्छा रहा।

नानी का पुनर्जन्म राजमहल में हुआ क्या? नानी ने गाय होकर जन्म लिया क्या? पहले खरगोश थी क्या? या कि समुन्दर के किनारे की लावारिश कुतिया? क्या वे सब प्रेमिकाएँ नानी के पुनर्जन्म हैं, जो प्रेमी के लिए कमरे की चटखनी लगाए बिना, इन्तजार करती है?

क्या उस चिता-भस्म मे क्षार भी नही था?

••

९५०७
3.4.87



भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और
अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान
और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी
मौलिक साहित्य का निर्माण

